विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप —रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु० प्रभाकर राव पंचपाल —(महाराष्ट्र)
७६ श्री विजय कुमार सिंह, झुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भृगुनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
०६. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे शिवपुरी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता —गानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. डी. जे हेममानी नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह—इलाहाबाद
७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता - परौना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला जयपुर, (राजस्थान)
०. श्री प्रफुल्ल तुंगारे पुणे (महाराष्ट्र)
१. श्रीमती कमला घोष —इलाहाबाद
२. श्री एस. डी. शर्मा अहमदाबाद

९३. श्रीमती प्रभा पारीक—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० [illegible]—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, थियोसोफिकल सोसा—छपरा (बिहार)
९ . श्री सुभाष वासुदेव—दुर्गापुर (आसाम)
९९. श्री [illegible] देसाई, बड़ौदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. शारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा – रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ —जामताड़ा (बिहार)
१०५. श्री सुनील चण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६ श्री बसन्तलाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७ श्री जयेश मद्दभट्ट —पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक—अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त मुक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े पुणे (महाराष्ट्र)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१० | १९९१—जुलाई | अंक—७

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

कलिकाल के लिए भक्तियोग है, नारदीय भक्ति। ईश्वर का नाम-गुणगान और व्याकुल होकर प्रार्थना करना—'हे ईश्वर, मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो, मुझे दर्शन दो।' कर्मयोग बड़ा कठिन है। इसीलिए प्रार्थना करनी चाहिए, 'हे ईश्वर, मेरे कर्म घटा दो और जितने कर्म तुमने रखे हैं उन्हें तुम्हारी कृपा से अनासक्त होकर कर सकूँ और अधिक कर्म लपेटने की मेरी इच्छा न हो!'

(२)

धर्म की सूक्ष्म गति है। जरासी कामना रहने पर भी कोई ईश्वर को पा नहीं सकता। सुई के भीतर सूत को जाना है, जरा-सा रोवाँ भी बाहर रह गया तो फिर नहीं जा सकता।

(३)

भाइयों के साथ मेल रखकर रहना। मेल रहने से ही देखने सुनने में सब भला होता है। नाटक में नहीं देखा? चार व्यक्ति गाना गा रहे हैं, परन्तु यदि प्रत्येक व्यक्ति अलग अलग तान छेड़ दे तो नाटक पर ही पानी फिर जायगा।

(४)

घर में साधुओं और संन्यासियों का चित्र रखना अच्छा है। सुबह उठकर दूसरों का मुँह देखने से पहले साधुओं और संन्यासियों का मुख देखकर उठना अच्छा है। दीवार पर अँग्रेजी तस्वीर—धनी, राजा और रानी की तस्वीरें—रानी के लड़कों की तस्वीरें—साहब और मेम टहल रहे हैं, उनकी तस्वीरें—इस तरह की तस्वीरें आदि रखना रजोगुणी के लक्षण हैं।

जिस तरह के संग में रहा जाता है, वैसा ही स्वभाव भी हो जाता है। इसीलिए तस्वीरों में भी दोष है।

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन–(२)

—स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

मूल, (राग कालिंगड़ा—झपताल)

जतने हृदये रेखो आदरिणी श्यामा माके।
मन तुइ देख आर आमि देखि, आर जेनो केउ नाहि देखे ॥
कामादिरे दिये फाँकि, आय मन बिरले देखि,
रसनारे संगे राखि, से जेनो मा बोले डाके ॥
कुरुचि कुमंत्री जतो, निकट होते दिओ नाको,
ज्ञाननयने प्रहरी रेखो, से जेनो सावधाने थाके ॥
कमलाकान्तेर मन भाइ आमार ए निवेदन,
दरिद्र पाइले रतन, से कि अजतने राखे ॥

भावानुवाद, (राग कालिंगड़ा—झपताल)

जतन से हिय में रखो प्रेममयी श्यामा माँ को।
मन तू ही देख और मैं देखूँ, दूसरा देख न पाये इसको ॥
कामादि को धता बता, आओ मन चुपके से देखें।
रसना को साथ ले लें, जिससे वह पुकारे माँ को ॥
कुरुचि कुमंत्रणा को, पास कभी न आने देना।
ज्ञान नयन को प्रहरी रखना जिससे सदा वह सजग हो ॥
कमलाकान्त कहे मन, भाई मेरा यह निवेदन,
निर्धन यदि पाये रतन, क्या रखे ना जतन से उसको ॥

क्षुरस्य-धारा (1)

लेखक—स्वामी त्यागानन्दजी महाराज
रामकृष्ण मठ, मद्रास

अनुवादक—ब्रह्मचारी रवीन्द्र
रामकृष्ण मठ, पुणे

[स्वामी त्यागानन्द कृत प्रस्तुत लेख रामकृष्ण मठ, मद्रास से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में जुलाई ९० से अक्टूबर ९० तक धारावाहिक रूप से छपा था। यहाँ इसका हिन्दी भाषान्तर ब्रह्मचारी रवीन्द्र ने किया है जो सम्प्रति रामकृष्ण मठ, पुणे के अन्तेवासी हैं।—सं०]

वेदान्त के छात्र 'क्षुरस्य-धारा' की उक्ति से भली-भाँति परिचित ही हैं। यमराज इस रूपक-अलंकार का प्रयोग नचिकेता को परम् सत्य तक पहुँचने के मार्ग का वर्णन करते समय करते हैं कि वह मार्ग कितना दुस्तर एवं जोखिम भरा है।[1] हर क्षण, जिसका तुम सामना करते हो, हर कदम जो तुम उठाते हो, सम्भावी संकटों से परिपूर्ण रहता है। केवल एक सदा जागरूक मुमुक्षु साधक ही मार्ग के इन अन्ध कूपों एवं भीषणताओं को टालने में समर्थ हो सकता है। केवल एक छोटी-सी फिसलन और तुम टकराते हुए नीचे जा सकते हो तथा इसके पूर्व कि तुम पुनः यात्रा शुरू कर सको, ऊपर उठकर आने में एवं घावों के भरने में काफी समय लग सकता है।

संकट दोनों स्तरों पर आ सकता है, स्थूल एवं सूक्ष्म। गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी महत्तम कृति 'रामचरितमानस' में नारद की कहानी कही है, जो साधक के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में आने वाले अनेक संकटों को दर्शाती है। कहानी इस सन्दर्भ में अत्यन्त शिक्षाप्रद है, कि वह हर एक सत्यान्वेषी के लिए एक आईना है जिसमें वह अपना चेहरा एवं अपने जीवन को प्रतिबिम्बित होते देख सकता है। कहानी उसे जाग्रत कर सदा जागरूक रहने के लिए प्रेरित करती है।

भारत के धार्मिक साहित्य में नारद की प्रतिष्ठा अनन्य है। वेद, उपनिषद्, गीता भागवत, महाभारत, रामायण एवं अनेक पुराणों में इनका उल्लेख मिलता है। वे नित्य भ्रमणशील देवर्षि हैं जो हाथों में वीणा धारण किये रहते हैं एवं हरि-नाम उनकी जिह्वा पर होता है। प्रस्तुत निबन्ध में नारद के जीवन की एक विशिष्ट घटना ही हमारे ध्यानाकर्षण का केन्द्र होगी, जो गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा वर्णित है।

कहानी इस तरह बढ़ती है कि प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा के चार पुत्र नारद द्वारा प्रशिक्षित हुए। नारद ने उन चारों में त्याग और वैराग्य के भाव कुछ इस हद तक भर दिये कि अन्ततः उन चारों ने संसार का त्याग कर संन्यस्त जीवन अंगीकार कर लिया। प्रजापति बड़े क्षुब्ध हुए। सृष्टि ही कैसे बढ़े यदि नारद इस तरह सभी में त्याग का प्रचार करते फिरें? उन्होंने नारद को शाप दिया जिसके फलस्वरूप उन्हें सदा भ्रमणशील ही रहना पड़े। उनका विचार यह था जिससे नारद अधिक काल तक एक ही स्थान पर रहकर नवयुवकों को संन्यस्त जीवन अंगीकार करने हेतु प्रभावित न कर सकें। अतः हम अधिकतर ग्रन्थों में नारद को

---

१. क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथस्तत कवयो वदन्ति। कठ उपनिषद् १.३.१४

विचरणशील साधु के रूप में पाते हैं जो सदा एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूम-घूमकर श्रीहरि के नाम-गुण का प्रचार करते हैं तथा उनके भक्तों को सहायता प्रदान करते हैं।

एक शुभ दिन ऐसा कुछ हुआ कि नारद हिमालय प्रदेश से होकर गुजर रहे थे। वे इसके पूर्व भी अनेक बार उस मार्ग से जा चुके थे। परन्तु इस बार वह जगह उन्हें कुछ भिन्न ही प्रतीत हुई। वह वसन्त ऋतु का समय था। प्राकृतिक दृश्यावली बहुत ही मोहक एवं मनोहर थी। नारद को वहाँ एक गुफा दिखी। कुछ ही दूर पर पवित्र गंगा नदी थी, जो अलौकिक मधुर संगीत के साथ बह चली थी। नारद रुक गये। वे गुफा के समीप गये। वहाँ एक उपयुक्त चट्टान देखकर उसपर अपना आसन जमा दिया। उनका मन दिव्य विचारों से भर उठा। वहाँ बैठते ही एकाएक वे गम्भीर ध्यान में निमग्न हो गये। यह सचमुच चमत्कार ही था। प्रजापति का अभिशाप - किसी तरह अपना प्रभाव खो बैठा एवं इस स्थान की अलौकिक सुन्दरता के समक्ष वशीभूत हो गया।

चमत्कार विषयक समाचार बहुत शीघ्र फैल जाते हैं। गन्धर्व, यक्ष, देव एवं अलौकिक लोकों के विभिन्न जीव सभी आश्चर्य से स्तम्भित-से हो गये—यह सुनकर कि यह नित्य भ्रमणशील श्रीहरि का दूत एक ही स्थान पर बैठा है और वह भी गम्भीर ध्यान में। देवराज इन्द्र को यह सोचकर भय हुआ कि कहीं नारद ने उनके सिंहासन को हड़पने के लिए तो यह कठोर तप शुरू नहीं किया है। एक अत्यन्त विशिष्ट प्रतिक्रिया जिससे सभी भली-भाँति परिचित हैं, जब कमजोर लोगों के हाथों में सत्ता आती है तो वे अपने आपको अस्थिर पाते हैं एवं संशयग्रस्त रहते हैं। उन्हें नित्य यह भय बना रहता है कि कोई उन्हें पदच्युत कर देगा। इसीलिए पौराणिक कथाओं में हम पाते हैं कि इन प्रसंगों में इन्द्र क्षुब्ध हो जाते हैं इस भय से कि किसी भी साधु के कठोर तप द्वारा उनका सिंहासन डगमगा जाएगा।

परन्तु नारद की कथा को आगे बढ़ाने के पूर्व एक तथ्य को स्पष्ट करना अच्छा ही होगा। ये देवता कौन हैं जो निरन्तर हमारी पौराणिक कथाओं में दृष्टिगोचर होते हैं ? स्वामी विवेकानन्द कुछ इस तरह से उत्तर देते हैं—

'इहलोक में जो लोग फल-प्राप्ति की इच्छा से सत्कर्म करते हैं वे लोग मृत्यु के बाद ऐसे ही किसी स्वर्ग में देवताओं के रूप में जन्म लेते हैं, जैसे इन्द्र अथवा अन्य इसी प्रकार। यह देवत्व एक पद विशेष है। देवता भी किसी समय मनुष्य थे और सत्कर्मों के कारण ही उन्हें देवत्व की प्राप्ति हुई। इन्द्र आदि किसी देवता विशेष के नाम नहीं हैं। हजारों इन्द्र होंगे। नहुष महान् राजा था और उसने मृत्यु के पश्चात् इन्द्रत्व पाया था। इन्द्रत्व केवल एक पद है। किसी ने अच्छे कर्म किये। फलस्वरूप उसकी उन्नति हुई और उसने इन्द्रत्व का पद पाया, कुछ दिन उसी पद पर प्रतिष्ठित रहा, फिर उस देव-शरीर को छोड़ मनुष्य का तन धारण किया। मनुष्य का जन्म सब जन्मों से श्रेष्ठ है। कोई देवता स्वर्ग-सुख की इच्छा छोड़ मुक्ति-प्राप्ति की चेष्टा कर सकते हैं, परन्तु जिस प्रकार इस संसार के अधिकांश लोगों को जिस प्रकार धन, मान और भोग विभ्रम में डाल देते हैं, उसी प्रकार अधिकांश देवता भी मोहग्रस्त हो जाते हैं और अपने शुभ कर्मों का फल भोग करके पतित होते हैं और फिर मानव-शरीर धारण करते हैं। अतएव यह पृथ्वी ही कर्म-भूमि है। इस पृथ्वी से ही हम मुक्तिलाभ कर सकते हैं। अतः ये स्वर्ग भी इस योग्य नहीं कि इनकी कामना की जाए।'[2]

वेदान्त यह स्पष्ट कहता है कि शुभ कर्मों से तुम्हारा स्वर्गवास निश्चित हो जाता है, तुम्हें अच्छा शरीर एवं नाना प्रकार की सुख भोग की

२. विवेकानन्द साहित्य १० भाग, (कलकत्ता अद्वैत आश्रम) ५-२६-२७

वस्तुएँ प्राप्त होंगी, परन्तु यह सब क्षणिक होता
है। जैसे ही तुम्हारे पुण्यों का क्षय होगा, जो कि
अवश्यम्भावी है, तो तुम्हें नीचे आना ही होगा
एवं इस धरती पर पुनः जन्म लेना ही होगा।
इसीलिए एक विवेकी मस्तिष्क इस स्वर्ग के आदर्श
का वहिष्कार करता है एवं किसी शाश्वत वस्तु
की इच्छा करता है। वेदान्त कहता है कि अच्छे कर्म
किये जाओ परन्तु उसमें फलासक्ति का त्याग करो।
इससे तुम्हारा मन पवित्र होगा एवं तुम
आध्यात्मिक मुक्ति की प्राप्ति हेतु योग्य सिद्ध होगे,
जिसकी प्राप्ति होने पर तुम सभी बन्धनों को छिन्न-
भिन्न कर सनातन रूप से मुक्त हो जाओगे।

अतः स्मरण रखना होगा कि ग्रन्थों में वर्णित
जिन देवताओं के सम्पर्क में हम आते हैं, वे ऐसे ही
भले मनुष्य हैं जिन्होंने मानव-देह में शुभ-कर्म किये
एवं शास्त्रोक्त वचन को चरितार्थ कर कर्म में
फलासक्ति रखी। इस आसक्ति से वे मुक्त नहीं हैं।
हम इस बात से भली-भाँति परिचित हैं कि यह
आसक्ति ही भय, घृणा, द्वेष उद्विग्नता, प्रतियोगिता
एवं शत्रुता का उपयुक्त उत्पत्ति-स्थान है।
इसीलिए जब हमारी कहानी में इन्द्र इस विचार से
विचलित होते हैं कि उन्हें कहीं अपने अभिलषित
सिंहासन से हाथ धोना न पड़ जाय तो इसमें कुछ
भी आश्चर्य नहीं है।

इन्द्र ने क्या किया? भला, अन्य कोई उनकी
जगह पर होता तो क्या करता? वह नारद के मार्ग
में विघ्न उपस्थित करता एवं वही इन्द्र ने भी
किया। चलिए, हम यह स्मरण रखते हैं कि नारद
ने इन्द्र के सिंहासन के विषय में कभी सोचा भी न
हो। वे तो उस स्थान की शांतता, सुन्दरता एवं
पवित्रता को निहारकर केवल ध्यान के लिए ही
आसीन थे। इन्द्र का भय शुद्ध कल्पना मात्र था।
जो आन्तरिक रूप से अस्थिर एवं दुर्बल होते हैं,
कल्पनाशक्ति उनके मस्तिष्क एवं सत्यवस्तु पर
आवरण डाल देती है। सिंहासन के लिए यह
अस्तित्वहीन भय इन्द्र को सत्य ही प्रतीत हुआ।

उसने प्रेम के देवता, कामदेव को बुलवाया एवं
उसे नारद को ध्यान-भंग तथा तपस्या से निरत
करने का आदेश दिया। कामदेव ने अपने धनुष,
काम-वाण, एवं दिव्य अप्सराओं की सेना के साथ
धावा बोल दिया। जहाँ नारद विराजमान थे,
कामदेव ने उस स्थान पर पहुँचकर सर्वप्रथम सम्पूर्ण
क्षेत्र को कुछ ऐसी मादक हवा से भर दिया जिससे
किसी भी प्राणी-मात्र में काम विकार उत्पन्न हो
जाय। तब उसने एवं उसके साथियों ने मिलकर
उन सभी उक्तियों का प्रयोग किया जिससे नारद
का मन भौतिक-भूमि पर आ जाय। नृत्य, संगीत
एवं कामुक वार्तालाप नारद के चारों ओर चलते
रहे। कामदेव ने एक के बाद एक कामवाणों का
प्रयोग किया। परन्तु, अत्यन्त आश्चर्यकारक!
वे सब नारद की समाधि भंग न कर सके। कामदेव
भौचक्का रह गया। अधिकांश जीव तो मात्र एक
ही बाण से उसके वशीभूत हो जाते हैं। परन्तु
यहाँ नारद थे, पूर्णतया अप्रभावित— यद्यपि उनपर
इन बाणों की बौछारकी गयी थी।

जब कामदेव को यह ज्ञात हुआ कि उसकी
युद्ध-सामग्री क्षीणप्राय हो गयी है, तो वह घबड़ाया।
पूर्वकाल के पीड़ा-कर अनुभवों की अपेक्षा भला
और क्या शिक्षाप्रद हो सकता है। पहले, जब
कामदेव शिव के लिए ऐसे ही अभियान
पर भेजा गया था तो शिव-कोप से पूर्णतया
भस्मीभूत हो गया था। सौभाग्यवश, शिव
के भोले-भाले स्वभाव ने उसे पूर्णतया नष्ट न
कर अशरीर रूप में वास करने की अनुमति दे दी
थी। कामदेव ने अब अपने आपको उसी अवस्था
में पाया। क्या होगा यदि पूज्य साधु उसे अभिशाप
दे दें? क्या होगा यदि देवर्षि उसे समूल नष्ट कर
दें? भय से थरथराता वह नारद के समक्ष गया
एवं साष्टांग प्रणिपात किया। नृत्यांगनाओं एवं
अप्सराओं के दल भी नारद के चरणों पर गिर
पड़े एवं उनसे क्षमा याचना की।

अन्ततः नारद ने आँखें खोलीं और देखा कि

सभी लोग उन्हें घेरकर खड़े हैं एवं आशीर्वाद व क्षमायाचना कर रहे हैं। उन्होंने हृदय से आशीर्वाद दिया और कहा कि उन लोगों की कृति से उन्हें जरा भी परेशान नहीं होना पड़ा है। देवर्षि के इस उत्कृष्ट आचरण से उन्हें काफी राहत मिली एवं उन्होंने शीघ्र ही इन्द्रलोक की ओर प्रस्थान किया। कामदेव ने जो घटित हुआ था वह सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्र को कह सुनाया। सभी ने एकमत हो नारद के काम एवं क्रोध को जीतने की तथा वैकुण्ठवासी श्रीहरि के पादपद्मों में उनकी अनन्य भक्ति को भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभी ने कहा, वे प्रभु ही हैं, जिन्होंने काम एवं क्रोध की बलि पड़ने से अपने प्रिय भक्त की रक्षा की। सबने मिलकर श्रीहरि की महिमा गायी एवं नारद का उदाहरण अपने समक्ष रखकर वे सब प्रभु के पाद-पद्मों में तीव्रता पाने हेतु प्रयत्नशील हुए।

यहां तक सब ठीक चला। परन्तु चलिए जरा हम नारद के पास चलते हैं, जहाँ वे हिमालय की घाटी में गुफा के बाहर बैठे हैं। उनकी वर्तमान मानसिक अवस्था क्या थी? रतिपति एवं उसके अनुचर जब चले गये, तो नारद ने चारों ओर दृष्टि डाली और उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि निश्चय ही कुछ असामान्य घटित हुआ है। सबसे पहले, उन्होंने यह पाया कि प्रजापति के शाप के बावजूद वे एक ही स्थान पर बैठे हैं और वह भी इतने अधिक कालतक गम्भीर समाधि में। द्वितीयतः, उन्होंने देखा कि यद्यपि मदन एवं उसकी अलौकिक अप्सराओं से लैस सेना ने यथाशक्ति उनके मन को प्रभु से विमुख करना चाहा, तथापि वे सर्वथा असफल ही हुए। उनके हृदय में किसी भी काम-विकार का स्फुरण नहीं हुआ यद्यपि वे मनमोहक नृत्य एवं संगीत से घिरे हुए थे। कामदेव के काम-बाण भी उनके हृदय का छेदन करने में अप्रभावी सिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त, नारद को यह भी अहसास हुआ कि उन्होंने अन्य दुर्दमनीय शत्रु क्रोध को भी जीतकर नष्ट कर दिया है क्योंकि मदन एवं उसके अनुचरों द्वारा उन्हें उत्तेजित करने का प्रयास किये जाने पर भी वे उनपर किंचित्मात्र भी क्रोधित नहीं हुए थे।

उसके बाद ही अनिष्टकर निष्कर्ष निकाला गया। नारद को लगा कि यह उनकी अद्वितीय उपलब्धि है जिसे उन्होंने स्वयं ही प्राप्त किया है। कैसी भाग्य की विडम्बना है! एक ओर जहाँ देव एवं अन्य स्वर्गस्थ निवासी इस घटना को अपने प्रिय भक्त की रक्षा हेतु श्रीहरि की ही विजय मना रहे थे, वहीं नारद थे जो स्वयं के ही विजयोन्माद में मग्न थे। नारद इतने आत्माभिमानी हो गये कि उन्हें भान ही न रहा कि उनकी अनवरत हरिनाम लेने की शृंखला भी टूट गयी है। वे स्वयं अपनी ही महिमा में डूब गये। एकबारगी अहंकार जब अपना फन उठाता है, तो सबकुछ ग्रस्त कर लेता है। बेचारे नारद! 'क्षुरस्य धारा' अब सम्मुख थी। जब तक तुम प्रभु को पकड़े रहते हो, जब तक तुम्हारे प्रत्येक कर्म, शब्द एवं विचार में प्रभु की उपस्थिति का बोध रहता है तुम्हारा पथ विस्तीर्ण, निष्कण्टक एवं सुगम हो जाता है।

जब तुम प्रभु को छोड़ते हो, जब तुम अपने कर्म, शब्द एवं विचार में ईश्वर-बोध नहीं रखते, तो तुम्हारा मार्ग सँकरा, बाधापूर्ण एवं दुर्गम हो जाता है। जितना तुम आगे बढ़ोगे तो, मार्ग उतना सँकरा होता जायगा, इतना कि वह 'क्षुरस्य धारा' में परिणत हो जाएगा। नारद अब इसी तलवार की धार पर चल रहे थे, विडम्बना यह थी कि वे इस सत्य से बेखबर थे।

आइए, हम सोचें कि वास्तव में नारद ने किस वस्तु की उपलब्धि की थी? वैसे तो कुछ भी उल्लेखनीय नहीं। वे कुछ देर के लिए मात्र काम एवं क्रोध को दूर रखने में समर्थ हुए थे। यह तो कोई असाधारण घटना नहीं हुई। कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जब घोर संसारी व्यक्ति भी इन वासनाओं द्वारा उत्तेजित किये जाने पर भी उनमें प्रवृ

नहीं होते। पूर्ण तृप्ति के भी क्षण आते हैं। ऐसे भी वक्त आते हैं, जो अल्पकाल के लिए भी क्यों न हों, जब हम संसारी सुखों के प्रति पूर्ण उदासीन हो उठते हैं। कोई भी बुरा मनुष्य दिन के चौबीसों घण्टों के लिए बुरा नहीं होता। कोई भी ठग जीवन का हर क्षण लोगों को ठगने में ही व्यतीत नहीं करता। इसीलिए नारद की इस तरह की विजय में कोई अनोखी बात नहीं थी। इसकी बजाय, उनके जैसे श्रेष्ठ भक्त को जिन्हें स्वयं श्रीहरि का स्नेह प्राप्त हो एवं उनके द्वारा वे रक्षित हों, इस सामान्य घटना पर इस तरह गौरवान्वित नहीं होना चाहिए था। परन्तु जैसा कि हमने कहा है, अहंकार सब कुछ ग्रस लेता है। सही गलत तथा गलत सही बन जाती है। साधारण वस्तु असाधारण बन जाती है जब अहंकार का तुम-पर आधिपत्य हो जाता है।

कोई भी मुमुक्षु साधक अपनी क्षणिक सफलता को स्थायी उपलब्धि नहीं कह सकता। विशेषकर उन विषयों में जो काम एवं क्रोध से सम्बन्ध रखते हों, कोई भी साधक अपने आपको अतिसुरक्षित होने का भ्रम नहीं पाल सकता। एक साधु पुरुष की कथा कही जाती है जिन्हें एकबार पूछा गया था, 'महात्मन्, क्या आपका जीवन काम एवं क्रोधरहित पूर्णतया पवित्र रहा है?' साधु ने कहा कि वे इस बात का उत्तर बाद में देंगे। कुछ वर्षों के पश्चात्, जब वे मरण-शय्या पर पड़े थे, उन्होंने प्रश्नकर्ता को अधिकारपूर्ण वाणी में कहा, 'हाँ मेरे मित्र, अब मैं अपना उत्तर पक्के हाँ में देता हूँ'। प्रश्न हुआ, 'आपने इतनी-सी बात कहने के लिए इतने वर्षों का विलम्ब क्यों किया?' उन्होंने कहा, मित्र जब तक यह शरीर रहता है, तब तक कोई भी व्यक्ति अति आत्मविश्वासी नहीं हो सकता। अब इस शरीर को छोड़ने का समय निकट आया है तथा मैं निश्चय पूर्वक तुमसे कह सकता हूँ कि मेरा जीवन पूर्णतया पवित्र रहा है।'

केवल आध्यात्मिक रूप से जाग्रत पुरुष, जिसका देहात्मबोध पूर्णतया नष्ट हो चुका है, वही काम, क्रोध एवं अन्य वासनाओं से मुक्त है, फिर चाहे वह कहीं भी तथा किसी भी परिस्थित में क्यों न रहे। अन्य लोगों के लिए कितनी भी सावधानी कुछ सावधानी ही नहीं है। नारद, जिनसे हम इस कहानी में मिलते हैं, अब भी साधकावस्था में ही हैं। एक श्रेष्ठ भक्त, श्रीहरि के लाड़ले, एक पवित्र साधु — सब कुछ सत्य है। परन्तु फिर भी उन्हें अपनी उपलब्धि को इतना अधिक नहीं समझ लेना चाहिए था जिसे वे सचमुच ही प्राप्त नहीं कर पाये थे। जो भी हो, चलिए हम लौट चलते हैं यह देखने के लिए कि नारद इस समय क्या कर रहे हैं?

गर्व से फूले हुए नारद ने चारों ओर देखा। इसके पूर्व, वे सर्वत्र और सदैव श्रीहरि की महिमा ही निहारा करते थे। परन्तु अब जो उन्होंने देखा वह हिमालय का जंगल एवं उसमें उनका एक मात्र वासी नारद अब स्वस्थ न बैठ सके। उन्होंने सोचा कि उन्होंने काम एवं क्रोध पर पूर्ण विजय की उपलब्धि कर ली है, जबकि अन्य सभी, उनके क्रीतदास हैं। नारद को लगा कि वे ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं और यह अनुपयुक्त होगा यदि अन्य लोग इस सत्य से अनभिज्ञ रहें। यही वह समय है जब वे अपनी दिग्विजय की घोषणा सभी में प्रसारित कर दें।

सर्वप्रथम नारद ने शिवजी के पास जाना ही उचित समझा। इसका एक विशिष्ट कारण भी था कि नारद चाहते थे कि शिवजी उनकी उपलब्धि को जान लें। उनकी शिवजी एवं अनन्तर श्रीविष्णुजी के साथ जो भेंट हुई, वह इस कथा को और भी रोचक बनाती है। जो दृष्टान्त स्वरूप यह दर्शाती है जिससे एक मुमुक्षु साधक को आध्यात्मिक जीवन के सूक्ष्म खतरों से किस प्रकार अपनी रक्षा करनी चाहिए?

यद्यपि नारद को कैलाश पहुँचने में एक माह नहीं लगेगा, तथापि हम अपनी कथा को अगले [illegible] शुरू करेंगे। (क्रमशः)

श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला (४)

—स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका- डॉ० नन्दिता भार्गव

(७)

आज शुक्रवार है, अक्टूबर १८८५ ई०, कृष्ण नवमी। (कलकत्ते में श्रीरामकृष्ण की उपस्थिति के बारे में भक्त वैकुण्ठ नाथ सान्याल ने लिखा है— "सेवाव्रत से उनके प्रति ही ध्यान रहेगा। उनके लीलामृत के चिन्तन से मन की मलिनता दूर होगी और भक्तों में भ्रातृत्व दृढ़ होगा। अथवा भक्तों की संसार-ज्वाला की शान्ति के लिए ही वे कलकत्ता आये हैं। वे अपनी व्याधि की निवृत्ति की इच्छा कर रहे थे या नहीं, परन्तु यहाँ नये आने वाले तृषितों को अपने कथामृत से तृप्त कर रहे थे। यह कहना कठिन है कि श्रीरामकृष्ण में अपनी पीड़ा को ठीक करने की इच्छा थी या नहीं, परन्तु उनके रोग की निवृत्ति के लिए व्यवस्थाओं में कमी नहीं थी।

सुबह सात बजे हैं। ठाकुर के कमरे में वलराम, मास्टर महाशय, गोपाल आदि उपस्थित हैं। श्रीरामकृष्ण ने बलराम को लक्ष्य करके कहा, "अव और क्यों? कोई मनोकामना तो है नहीं, अकारण ही क्यों यह शरीर (धारण किया जाय)?" श्यामपुकुर वाले किराये के मकान में जाने की बात हुई।

श्रीरामकृष्ण (सेवक गोपाल को) "रामलाल (पंचाँग देखना) बहुत अच्छा जानता है।" गोपाल, "(रामलाल ने) बताया है कि नवमी तिथि स्थानान्तर के लिए अशुभ है। परन्तु एक दूसरे पण्डित के अनुसार आज का ही दिन स्थानातर के लिए शुभ है।

श्रीरामकृष्ण (गोपाल से) "सुन, अपने इशारे से गोपाल को बताया कि दक्षिणेश्वर जाकर रामलाल को क्या कहना होगा और रामलाल की दलीलों के विरुद्ध भी क्या जवाव देना ठीक रहेगा।

थोड़ी देर वाद मास्टर महाशय ने कहा, "गोपाल बाबू को कह दिया है कि यदि सुविधा हो तो वे (दक्षिणेश्वर में ठाकुर के कमरे में) "सीमेंट" करवा दें।" श्रीरामकृष्ण, "अभी क्यों कहा?"

मास्टर महाशय, "इस समय ठीक है वहाँ पहुँचने पर कुछ नहीं हो पायेगा।" मास्टर महाशय घर जाने को थे कि उन्होंने सुना कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण उनसे कह रहे हैं, "डाक्टर को आ जाने दो।"

मास्टर महाशय डाक्टर की प्रतीक्षा करने लगे। उन्हें स्कूल पहुँचना था। इसलिए दस बजे के लगभग वे जाने की तैयारी करने लगे। श्रीरामकृष्ण ने स्नान के पश्चात् मास्टर महाशय से पूछा (हंसते हुए) "किस प्रकार देख रहे हो?" मास्टर महाशय, "भय की बात नहीं है।"

श्रीरामकृष्ण इंगित से मास्टर महाशय से पूछते हैं, "खाना कहाँ खाओगे?" मास्टर महाशय, "स्कूल के दरवान के पास।"

यह सुन कर श्रीरामकृष्ण को हंसी आ गयी। इन दिनों, रात हो या दिन, मास्टर महाशय ठाकुर की सेवा में जितना अधिक सम्भव हो सकता था, स्वयं को नियुक्त रखते थे। अक्सर वे अपने घर जाकर माध्याह्न का भोजन नहीं कर पाते थे।

अतः स्कूल के दरवान का पकाया हुआ खाना खाकर ही वे अपना काम चला लेते थे।

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि वैद्य गंगा प्रसाद सेन[1] आ गये। गंगा प्रसाद कुमार टोली में रहते थे। वैद्य को देखकर श्रीरामकृष्ण ने पानदान को हटा दिया। चादर, तकिया, अंगोछा आदि सलीके से रखा। इशारे से कहा कि वहाँ से जूते को हटा लिया जाय। वैद्य श्रीरामकृष्ण के बिस्तर के पास आकर बैठ गये। उनका मुख लाल सुर्ख हो रहा था। वे गम्भीर थे। उन्होंने श्रीरामकृष्ण से पूछा, "आप कैसे हैं?" और वे ठाकुर के हाथों को अपने हाथों से सहलाने लगे।

वहाँ देवेन मजुमदार उपस्थित थे। देवेन के प्रश्न के उत्तर में वैद्य ने कहा, "रोग साध्य है या असाध्य, यह तो परीक्षा कर लेने के बाद ही कह सकूँगा। मास्टर महाशय "क्या भय की बात है?"

गंगा प्रसाद ने दुविधा में उत्तर दिया, "नहीं, वैसे सभी बीमारियों में भय तो रहता ही है।"

थोड़ी देर बाद गंगा प्रसाद जाना चाहते थे। जाने से पहले उन्होंने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया। श्रीरामकृष्ण, "(जोड़ा साँको के) राम डाक्टर ने शहद खाने के लिए कहा था। (शहद खाकर शरीर) गर्म हो गया—जलन होने लगी।" गंगा प्रसाद, "इसीलिए तो—दवा लेनी होगी।"

गंगाप्रसाद के चले जाने के तनिक देर बाद डाक्टर प्रतापचन्द्र मजूमदार उपस्थित हुए। प्रारम्भिक बातचीत के बाद श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर प्रताप से कहा, "हर रोज एक बार तुम अवश्य आना—सुबह के समय——।"

अब मास्टर महाशय स्कूल के लिए विदा लेते हैं। श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा, "अच्छा अब तुम जाओ।"

मास्टर महाशय के बाद पण्डित शशधर तर्कचूड़ामणि आज फिर आये हैं। श्रीरामकृष्ण के असाध्य रोग की निवृत्ति के लिए उन्होंने एक उपाय बताया, "दो घंटे तक समाधि अवस्था में मन को रखने से व्याधि ठीक हो जायेगी।" यह सुन श्रीरामकृष्ण उनके निकट आये और समझाकर कहा, "मैंने सोचा तो था, पर मन लौट आता है। जब कभी (अपने शरीर की बात) सोचता हूँ तो देखता हूँ कि (यह शरीर) खोखला है।[2] एक आवरण मात्र (पड़ा हुआ है।)" सम्भवतः शशधर तर्कचूड़ामणि श्रीरामकृष्ण के वक्तव्य को समझ ही नहीं पाये।

२५ पौष। ३२७ बंगाब्द में (इस घटना के लगभग ३५/३६ साल बाद) अपनी वृद्धावस्था में चूड़ामणि ने एक पत्र में लिखा था, "वे (श्रीरामकृष्ण) शरीर त्यागने के पूर्व ५/६ महीने तक कण्ठ रोग की वेदना से बहुत पीड़ित थे। यदि वे अपने इच्छानुसार मन को मनोमय कोश में ले जाते तो इतना कष्ट कदापि न सहना पड़ता। मैं जब उनसे मिला था तो मैंने कष्ट से मुक्ति पाने के लिए उन्हें इस प्रकार का एक अनुष्ठान करने की सलाह दी थी। इस पर उन्होंने कहा था कि, "यदि मैं मन को एकाग्र करने की कोशिश करता हूँ तो मन मेरे इष्ट देवता की ओर चला जाता है। इस कारण मैं ऐसा नहीं कर पाऊँगा।" वे योग शक्ति के द्वारा मनोमय कोश में पहुँच पाते या नहीं पाते, तो जो भी हो, मेरे विचार में वे एक साधु प्रकृति के व्यक्ति अवश्य थे। मैं भलीभांति समझ गया था कि देहावसान के कुछ दिन पहले वे तनिक नीचे आ गये थे।"

पंचांग में नवम्यादि कल्पारम्भ देख कर यह तय किया गया कि इसी दिन संध्या साढ़े सात बजे श्रीरामकृष्ण (श्यामपुकुर वाले) किराये के मकान में जायेंगे। अतः बलराम भवन से विदा लेकर श्रीरामकृष्ण ५५ नं० श्याम पुकुर स्ट्रीट के

मकान में चले आये।

श्रीरामकृष्ण के सात दिनों के जीवन वृतान्त का चिन्तन करने से कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं। वैद्यगण परीक्षा कर तथा देख-सुनकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि श्रीरामकृष्ण को असाध्य रोहीणी (कैंसर) व्याधि हुई है। दूसरी ओर देह बुद्धि रहित श्रीरामकृष्ण के सौंदर्यमय जीवनरूपी पात्र से अपूर्व मधुरता निर्गत हो रही थी। वह मानो नयी, शोभा तथा ऐश्वर्य के साथ सारे संसार में फैल जाने के लिए महान भूमिका की रचना कर रही थी। परिचित अपरिचित बहुत लोगों के आगमन से बलराम भवन एक आनन्द पूर्ण समारोह स्थल बन गया था। श्रीरामकृष्ण की बिन कारण ही अपार कृपा बरसाना और उनके दिव्य भाव का सैलाब मानों अन्तिम लीला का पूर्वाभास था। ठाकुर ने अपनी देह तथा भयंकर व्याधि को तुच्छ समझकर संसार के कल्याण के लिए आत्माहुति दी। उन्होंने योग दृष्टि से देखा कि शरीर खोखला सा-आवरण मात्र है। अतः शरीर और उस भयंकर विनाशकारी रोग की परवाह न कर श्रीरामकृष्ण ने अधिक से अधिक मनुष्यों की निम्नगामी चेतना को उर्ध्वगामी करने के लिए अपने आप को नियुक्त कर दिया।

---

१. साधना के समय ठाकुर के ईश्वर के भाव में विभोर मतवाली अवस्था को रोग समझकर उन्हें चिकित्सा के लिए इन्हीं वैद्य के पास ले ले जाया गया था।

२. २३ अक्टूबर को गिरीशचन्द्र ने डाक्टर सरकार को बताया था, "पण्डित शशधर ने कहा था, "आप समाधि अवस्था में मन को ऊपर ले जाइए— इस प्रकार से रोग ठीक हो जायेगा।" परन्तु ठाकुर ने भाव में देखा कि शरीर एक आवरण मात्र है।

□

प्रत्येक धर्म-साधक एवं अध्यात्म-जिज्ञासु के लिए अवश्य पठनीय पुस्तक

पथ और पाथेय

लेखक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

प्रकाशक—श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम,

जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१ ३०१ (बिहार)

पृष्ठ—२०१

मूल्य—१५ रुपये मात्र (डाक खर्च १० रुपये अलग)

कर्मयोगिनी माँ सारदा

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी।

निष्काम भाव से कर्म और कर्मफलों को भगवान् को समर्पित करते हुए कर्म करना कर्मयोग कहलाता है। कर्मयोग को सामान्यतः चित्त शुद्धि-का एक साधन माना जाता है। कर्मयोग द्वारा चित्त शुद्ध होने पर उसमें ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, तथा वह ज्ञान का भी अधिकारी होता है। इस तरह परंपरागत रूप से कर्मयोग ज्ञान अथवा भक्ति का एक सोपान मात्र माना गया है। लेकिन इससे उसका महत्त्व कम नहीं हो जाता। प्रत्येक साधक को कर्मयोग रूपी सीढ़ी से होकर ही ऊपर उठना पड़ता है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का विशेष रूप से उपदेश दिया गया है। गीता में कर्मयोग की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत किये जाने पर भी कर्मयोग में अन्य योगों की तरह अन्तरंग और बहिरंग योग, वैधी व पराभक्ति आदि विभाजन नहीं है। कर्म योग में कर्म के बदले जिस भावना या दृष्टिकोण से कर्म किया जा रहा है, उसका महत्त्व है।

माँ सारदा की जीवनी से परिचित सज्जन यह जानते हैं कि माँ ने अत्यन्त कर्मठ जीवन व्यतीत किया था, जिसे यदि 'व्यस्त' जीवन कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जीवन की अन्तिम सांस तक अपना स्वधर्म किये जाना, तथा श्रीरामकृष्ण, जिनकी वे सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी थीं, के जीवनोद्देश्य की पूर्ति में लगे रहना अपने आप में एक आदर्श है। लेकिन उससे भी महत्त्वपूर्ण है वह दृष्टिकोण या मनः स्थिति जिसके द्वारा उन्होंने समग्र कर्म किये थे। प्रस्तुत लेख में इन सभी तथ्यों पर अवधानता पूर्वक विचार करने का प्रयत्न किया गया है। जिससे पाठक कर्मयोग के रहस्य से परिचित हो सके।

माँ के जीवन का पूर्वार्द्ध श्रीरामकृष्ण की तथा उत्तरार्द्ध भक्त-सन्तानों की सेवा में व्यतीत हुआ। वे बाल्यकाल से ही घर के सारे कामकाज करने लग गयी थीं। उस समय उनकी उम्र इतनी कम थी कि वे भात के बर्तन को स्वयं चूल्हे से उतार नहीं सकती थीं। रसोई बनाना, छोटे भाई बहनों को संभालना, खेत में काम कर रहे मजदूरों के लिए खाना ले जाना, गले तक पानी में उतर कर तालाब से साग तोड़ना इत्यादि सभी कार्य वे अति अल्प आयु से करने लगी थीं।

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण की सेवा ही उनका प्रमुख कार्य था। पेट का रोग होने के कारण श्रीरामकृष्ण को सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ सह्य नहीं होते थे। अतः उनके पेट के अनुकूल खाद्य पदार्थ माँ ही तैयार करती थीं। ईश्वर केन्द्रित समाधि प्रधान व्यक्तित्व-सम्पन्न श्रीरामकृष्ण को भोजन कराते समय माँ उन्हें बातों में व्यस्त रखती थीं जिससे उनका मन समाधिस्थ न हो। स्नान के पूर्व उनके शरीर पर तेल मालिश करना, रात्रि को शयन के समय चरण सेवा करना (पैर दबाना), तथा उनकी शय्या को साफ करना, इत्यादि सभी कार्य माँ तब तक करती रहीं जब तक श्रीरामकृष्ण के अन्य अन्तरंग भक्त सेवक उनकी सेवा में नियुक्त न हो गये। जैसे कोई माँ अपने शिशु पर सब समय दृष्टि रखती है वैसे ही माँ भी श्रीरामकृष्ण पर सब दशाओं में दृष्टि रखती थीं कि कहीं भावावस्था में वे अचेतन एवं

असुरक्षित न पड़े हों।

श्रीरामकृष्ण की वृद्धा माता चन्द्रामणि देवी भी नहबत में रहा करती थीं। माँ उनकी सेवा इतनी तत्परता से करती थीं कि उनकी एक आवाज पर उनके पास पहुँच जाती थीं। जब श्रीरामकृष्ण के भक्त एवं शिष्य समुदाय का आगमन होने लगा, तब माँ को प्रतिदिन अनेक भक्तों के लिए भोजन बनाना पड़ता था। माँ विभिन्न रुचियों वाले भक्तों के लिए भिन्न प्रकार के भोजन तैयार करती थीं। यह तो पुरुष भक्तों की बात हुई। जो महिला भक्त माँ के साथ रहती थीं उनकी रुचि के अनुरूप भी माँ को भोजन बनाना पड़ता था। इसके अतिरिक्त झाड़ू-बुहारना, बर्तन मांजना, सिलाई-बुनाई इत्यादि घर गृहस्थी के कार्य भी माँ को ही करने पड़ते थे। समय मिलने पर माँ भवतारिणी के लिए माला भी तैयार करती थीं। इसके अतिरिक्त उन्हें भक्तों और महिलाओं को सान्त्वना और सलाह मशविरा भी देते रहना पड़ता था। माँ के जीवन के उत्तरार्द्ध में उपदेश एवं मार्गदर्शन का कार्य बढ़ गया था। उसी कालावधि में उन्हें अपने भाइयों की घर गृहस्थी भी सँभालनी पड़ती थी।

उपर्युक्त उल्लिखित कार्यों को वे अत्यन्त दक्षता एवं पटुता से करती थीं। एक बार माँ भवतारिणी के लिए उन्होंने अत्यन्त सुन्दर माला गूँथी थी। उससे माँ के दिव्य सौन्दर्य की इतनी श्रीवृद्धि हुई कि स्वयं श्रीरामकृष्ण अभिभूत हो उठे। माँ सारदा व्यवहार कुशल भी थीं। जूट की रस्सी और छींका बनाने के बाद बचे हुए रेशों से, वे तकिया बना लेती थीं। निरर्थक समझी जाने वाली छोटी छोटी वस्तुओं यथा टोकरी, झाड़ू इत्यादि का भी उपयोग करना वे जानती थीं।

किसी को अपना बनाना तो कोई माँ से सीखे। नवागत भक्तों को आदर सेवा, प्रेम से अपना बनाने के लिए वे विशेषरूप से मसालेदार पान तैयार करती थीं। श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए जब वे श्यामपुकुर के मकान में गयीं तब स्थानाभाव होते हुए भी उन्होंने अत्यन्त अल्प समय में परिस्थितयों के अनुरूप अपने को ढाल लिया। अपनी लज्जाशीलता की रक्षा करते हुए भी उन्होंने श्रीरामकृष्ण की सेवा में किंचित भी व्यवधान नहीं होने दिया।

माँ का सम्पूर्ण जीवन कर्म कौशल के व्यावहारिक सिद्धान्त का जीवन्त प्रमाण है, और इस कार्य कुशलता का पाठ उन्होंने श्रीरामकृष्ण जैसे सुदक्ष आचार्य से ही पढ़ा था। श्रीरामकृष्ण का एक उपदेश है। जेखाने जेमन, सेखाने, तेमोन, जखन जेमन, तखन तेमोन, जे जेमोन तार तेमोन।" बंगला भाषा के इस मुहावरे का अर्थ है, देश काल, पात्र के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। माँसारदा का समग्र जीवन इसका उत्कृष्ट उदाहरण था। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें दीपक में बाती रखने से लेकर पान के बीड़े तैयार करने तक तथा घर के बड़े बूढ़ों एवं रिश्तेदारों से लेकर नौका में सबसे आखिर में चढ़ने एवं सबसे बाद में उतरने इत्यादि लौकिक व्यवहारों तक की शिक्षा दी थी। जिनका पुंखानुपुंख पालन माँ ने सारे जीवन किया।

किन्तु सामान्य कर्म एवं कर्मयोग में मूलभूत अन्तर दृष्टिकोण का है। सामान्य कर्म अहं केन्द्रित रहता है। अपनी तुष्टि, स्वार्थ सिद्धि, फलाकांक्षा तथा नाम यश के लिए किया जाता है। इसमें व्यक्तित्व प्रधान तथा भाव गौण हो जाता है। यह कर्मयोग नहीं है। जब तक कर्म प्रभु से युक्त नहीं होता तब तक उसे योग तो नहीं ही कहा जाएगा। कर्मयोग विषयक उपर्युक्त विचारों के आलोक में जब हम माँ सारदा के कर्म पर दृष्टिपात करते हैं तो यह देखते हैं कि माँ सारदा ने सभी कर्मों को श्रीरारकृष्ण प्रीत्यर्थ किया। यह एक भक्त का दृष्टिकोण है। क्योंकि भक्त केवल भगवान या अपने इष्ट प्रीत्यर्थ ही कर्म करता है।

ऐसे कर्म की प्रक्रिया में अपना व्यक्तित्व न्यून एवं प्रभु प्रेम की पीयूषवर्षी भाव धारा प्रधान होती है जिसमें व्यक्ति का अहं सागर की धार में तिनके-सा बह जाता है। यदि इस दृष्टि से देखें तो माँ सारदा ने अपने स्वयं के सुख की जरा भी परवाह नहीं की। कभी कभी तो कुछ कदम की दूरी पर (नहबतखाने में रहते समय) महीनों वे श्रीरामकृष्ण के दर्शनों से वंचित रह जाती थीं। ऐसे अवसरों पर वे अपने मन को यह कहकर सान्त्वना देती थीं—रे मन, तूने ऐसा कौन सा पुण्य किया है कि तुझे प्रतिदिन उनके (श्रीरामकृष्ण के) दर्शन मिलें।" इस तरह यदि गीता की दृष्टि से देखा जाय तो निष्काम भाव से कर्म करते करते माँसारदा कर्मयोग में सर्वतोभावेन प्रतिष्ठित हो गयी थीं। गीता में कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखने वाले विद्वान को योगी और सर्वकर्मकर्त्ता कहा गया है। माँसारदा भी इसी कोटि की थीं। निरन्तर, अनथक, अविराम कर्म करते हुए भी वे आन्तरिकरूप से पूर्णतया प्रशान्त थीं। उनकी मानसिक शान्ति कभी नष्ट नहीं होती थी। लोग जब उनके पास जाकर अपनी अशान्ति की चर्चा करते तो वे आश्चर्य चकित होकर यही कहतीं कि मुझे तो कभी अशान्ति नहीं होती। इसके विपरीत अगर वे खाली बैठी होतीं, तो भीतर ही भीतर भगवच्चिन्तन रूप कर्म सदा चलता ही रहता था।

कर्मयोगी का दूसरा लक्षण 'समत्व' है। 'समत्वं योग उच्यते।' माँसारदा के जीवन में सभी प्रकार का समत्व था। उनके लिए उपासना एवं झाड़ू लगाना, भक्तों को भोजन कराना और उनके जूठे पत्तल उठाना समान कार्य थे। अमजद जैसा दुर्दान्त दस्यु एवं सारदानन्दजी जैसे सन्त उनके लिए समान थे। वे कहतीं—"जैसे सरत् मेरा पुत्र है वैसे ही अमजद भी।" सन्त-असन्त, पापी-पुण्यात्मा सबको वे समान भाव से देखती थीं। इसी प्रकार स्थान, व्यक्तियों तथा वस्तुओं के प्रति उनकी समदृष्टि थी। नहबत के संकरे मकान में चटाई और जूट के तकिये पर सोना तथा कलकत्ते के अपने भवन उद्बोधन में रूई के गद्दे पर सोना उनके लिए समान थे।

कर्मयोगी का एक लक्षण और है, निर्लिप्तता या अनासक्ति। आपात दृष्टि से भांजी राधू के प्रति तीव्र आसक्ति होते हुए भी माँ पूर्णरूप से अनासक्त थीं। जीवन की सायं वेला में राधू के प्रति अपनी आसक्ति का परित्याग उन्होंने क्षणमात्र में कर दिया था। गीता की भाषा में ऐसे ही अनासक्त कर्मयोगी लोक संग्रह के लिए कर्म करते हैं। श्रीरामकृष्ण के लीला संवरण के बाद लगभग तीस वर्षों तक माँ ने अपने शरीर को रखा था। वे स्वयं कहती थीं कि आदर्श स्थापन की दृष्टि से जितना करना चाहिए उससे कहीं अधिक मैंने किया है। सेवा, त्याग, तितिक्षा इत्यादि का माँ द्वारा प्रस्तुत आदर्श अतुलनीय है।

उपसंहार

उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन एवं विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि माँ सारदा एक महान साधिका ही नहीं बल्कि चारों योगों में पूर्ण प्रतिष्ठित एक महान सिद्धा थीं। ज्ञानयोग, भक्ति-योग, राजयोग अथवा कर्मयोग, इनमें से कौन उनके जीवन में प्रधान था कहना कठिन है। क्योंकि जिस दृष्टि से भी देखा जाए वे पूर्ण दिखाई देती हैं। जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण में ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग पूर्ण विकसित एवं संग्रन्थित रूप से विद्यमान थे, वैसे ही माँ के चरित्र में भी इन चारों योगों का अभूतपूर्व विकास और सम्मिश्रण हुआ था। पार्थक्य बस इतना ही था कि वे (योग) एक सामान्य सांसारिक, लौकिक अथवा व्यावहारिक जगत् की पृष्ठभूमि में अभिव्यक्त हुए थे।

और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि माँ-सारदा ने कभी भी इन विभिन्न योगों का शास्त्रीय ज्ञान के बाद क्रमबद्ध रूप से विधिवत् अनुष्ठान नहीं किया था। थोड़ी गहराई में जाने पर हम

सरलता से यह बात समझ जायेंगे कि साधना पद्धतियों में सर्वप्रथम मन को एकाग्र एवं चित्त को शुद्ध करने पर, संसार से वैराग्य और अनासक्ति को विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है। यदि कोई साधक प्रारंभ से ही इन सद्गुणों से युक्त हो, अथवा परिवार एवं कुल के शुभ संस्कारों तथा बाल्यकाल की शिक्षा एवं माता-पिता द्वारा प्रशिक्षण के द्वारा एकाग्रचित और वैराग्यवान हो जाये, तो फिर किसी भी साधना के अनुष्ठान और सिद्धि में अधिक कठिनाई नहीं होती। इस दृष्टि से देखा जाय तो प्रारंभिक तैयारियों के रूप में साधक को जिन साधनाओं को करना पड़ता है, उन्हें माँसारदा को करना ही नहीं पड़ा था। प्रारंभ से ही वे एक उत्तम अधिकारिणी थीं।

माँ के जीवन से साधना के एक अनुद्घाटित पक्ष का रहस्योद्घाटन होता है, कि किसी भी साधना पद्धति को क्यों न अपनाया जाय, निष्ठा और अध्यवसाय के द्वारा उसमें लगे रहने पर अन्त में सभी साधनाओं की फलप्राप्ति उससे हो सकती है। जैसा कि पूर्व में निवेदन किया जा चुका है कि माँसारदा की मुख्य साधना श्रीरामकृष्ण की सेवा थी। इसके साथ वे नित्य पूजा, ध्यान तथा एक लाख जप, प्रतिदिन किया करती थीं। अकेले सेवा ही एक ऐसी साधना है जिसमें ज्ञान, कर्म भक्ति और योग चारों का समावेश तथा चारों की साधना हो सकती है। नित्य पूजा भक्ति-योग का, तथा ध्यान राजयोग का अंग है। इस तरह से विचार करने पर लगता है कि कितनी सरलता से चारों योगों का समन्वय किया जा सकता है। माँसारदा के जीवन की यह विशेषता है कि उन्होंने शास्त्र एवं साधना, धर्म और आध्यात्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा गूढ़ातिगूढ़ तथ्यों को बोधगम्य एवं सर्वजन सुलभ बनाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि माँसारदा का जीवन अपने आप में एक संपूर्ण सर्वांगीण एवं ऐसा आदर्श जीवन है जिसका अनुकरण सभी सर्व अवस्थाओं में कर सकते हैं। हमने उसे चार योगों के परिप्रेक्ष्य में देखने तथा उसका विवेचन विश्लेषण करने का प्रयास किया है; किन्तु माताजी के जीवन और चरित्र की चारुता विश्लेषण का विषय नहीं है उसका सौन्दर्य तो सर्वांशतः स्वीकार करने में है माँ के महनीय किंतु सरल, उदात्त, किंतु सामान्य जीवन का यत्किंचित अनुकरण ही हमारे जीवन में ज्ञान, भक्ति एवं शान्ति का संचरण कर हमें धन्य बना सकता है।

शान्त रहकर संचय करो और आध्यात्मिकता के 'डायनेमो' बन जाओ।

—स्वामी विवेकानन्द

चिन्ता करना सीखो। नये विचारों को जन्म दो। —स्वामी विवेकानन्द

विचार बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि जो कुछ हम सोचते हैं वही हो जाते है।

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण और हिन्दी

--डॉ० केदारनाथ लाभ

अवतार पुरुषों का आगमन न केवल साधुओं के परित्राण, दुष्टों के दलन और धर्म के संस्थापन के लिए होता है बल्कि उनके अवतरण से देश-विशेष की सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भाषागत गति-विधियाँ भी प्रभावित और परिष्कृत होती हैं। भगवान बुद्ध, तीर्थंकर महावीर, ईसा मसीह आदि अवतार पुरुषों ने अपने संदेशों-उपदेशों और आदर्शों के प्रचार-प्रसार के लिए जिस भाषा को अपने भाव-संप्रेषण का माध्यम बनाया, उस भाषा की भी आशातीत समृद्धि एवं श्रीवृद्धि हुई। इन अवतार पुरुषों की भाषा, शैली, प्रतीक-योजना, बिम्ब-विधान, उपमाएँ, रूपक, उदाहरण आदि में एक अनुभूतिगत संबल होने के कारण उनमें एक अभिनव जीवंतता एवं प्राणवत्ता का संचार हो जाता है। स्वभावतः उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा लोगों के मन-प्राणों का सहज संस्पर्श करने म समर्थ होती है और उनका कंठहार हो जाती है। उस भाषा के विकास और प्रसार में भी एक विद्युत ऊर्जा का संचार हो जाता है।

अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण के जीवनदायी संदेशों एवं ऊर्ध्वग उपदेशों ने न केवल भारतीय बल्कि विश्व-जीवन को प्रेरित-प्रभावित किया है। प्रोफेसर मैक्समूलर की दृष्टि में "श्रीरामकृष्ण के उपदेश हमारे सम्मुख न केवल स्वयं उन्हीं के विचारों को प्रकट करते हैं, वरन् वे करोड़ों मानवों की आशा और विश्वास के भी प्रतीक हैं।" और रोमाँ रोलाँ का कथन है कि "श्रीरामकृष्ण तीस कोटि भारतीयों के उस अखण्ड आध्यात्मिक जीवन के पूर्ण प्रकाशस्वरूप थे, जिसकी पावन धारा विगत दो सहस्र वर्षों से सतत प्रवाहित होती आ रही है। इतना ही नहीं उनके जीवन-संगीत से ससार के सहस्रों धर्मपन्थों एवं उपपन्थों के विभिन्न, परस्पर विरोधी दिखनेवाले स्वरों में समरसता लानेवाली मंजुल ध्वनि निकलती है।" ऐसे पुराण-पुरुष श्रीरामकृष्ण देव ने अपने दैवी भावों की अभिव्यक्ति बंगला भाषा में कर उसे धन्यता प्रदान की। श्रीरामकृष्णदेव के अवतरण के पश्चाप्र बंगला भाषा की जो सर्वाङ्गीण श्रीवृद्धि हुई वह स्वयं सिद्ध है। किन्तु अनेक लोग यह नहीं जानते कि श्रीराम-कृष्ण देव अपने ऐश्वरी भावों की अभिव्यक्ति बंगला के अतिरिक्त यदा-कदा हिन्दी में भी किया करते थे। यद्यपि श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में कई नेपाली, पंजाबी, मराठी एवं अँग्रेजी आदि भाषा-भाषी आये परन्तु श्रीरामकृष्ण ने बंगला और हिन्दी में ही अपने भाव व्यक्त किये। हाँ, हास-परिहास की मुद्रा में कभी-कभी वे "थैंक्यू-थैंक्यू" जैसे अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी अवश्य कर देते थे।

श्रीरामकृष्ण के पूर्व बंगाल में हिन्दी

पलासी के युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी मात्र व्यापारिक संस्थान नहीं रहकर सरकार बन गयी थी। उसने कलकत्ते को अपना प्रशासनिक केन्द्र बनाया था। साथ ही कलकत्ता एक प्रमुख्य व्यापारिक केन्द्र भी था। अतः वहाँ बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि के छोटे-बड़े व्यापारी एवं मजदूर आदि बड़ी संख्या में आ बसे थे जिनकी बोलचाल की भाषा हिन्दी थी। फिर १८०३ ई०

में कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी-उर्दू के अध्यापक जॉन गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा हिन्दी में जब गद्य की पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की तब उन्होंने हिन्दी में भी कुछ पुस्तकें तैयार करवायीं। उसी समय ईसाइयों का प्रधान अड्डा सिरामपुर में विलियम केरे आदि ने ईसाई धर्म ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद कराना शुरू कर दिया था। हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' भी सन् १८२६ ई० में कलकत्ते से निकला था। सन् १८२९ में राजा राम मोहन राय ने 'बंगदूत' नामक एक संवाद पत्र हिन्दी में निकाला था। कलकत्ते में हिन्दी के कई प्रेस (मुद्रण यंत्र) भी स्थापित हो चुके थे। इस प्रकार कलकत्ता हिन्दी के प्रचार-प्रसार का एक प्रमुख केन्द्र हो गया था।

इसी बीच सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों में इस बात पर चिन्तन चलने लगा कि किस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर भारतीय जनता 'बाबू' बन जाय। कुछ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मनीषीगण भी अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार की वकालत करने लगे। इनमें 'आधुनिक भारत की जागृति के अग्रदूत' राजा राममोहन राय प्रमुख थे। उन्होंने ११ दिसम्बर, १८२३ ई० को गवर्नर-जेनरल एमहर्स्ट को एक लम्बा पत्र भेजा जिसमें संस्कृत के पठन-पाठन की खिल्ली उड़ायी और अंग्रेजी का गुणगान किया। उन्होंने भारतवासियों को अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करने की जोरदार वकालत की। फलतः कलकत्ते के प्रसिडेन्सी कॉलेज में अंग्रेजी शिक्षा का बीजारोपण हो गया।

इधर ईस्ट इंडिया कम्पनी के अन्तर्गत एक 'कमिटी ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन' काम कर रही थी जिसका कार्य था शिक्षा की व्यवस्था, पाठ्य पुस्तकों का निर्माण, प्रकाशन और वितरण का प्रबंध करना। इस कमिटी के सदस्यों का एक वर्ग तो संस्कृत-अरबी को शिक्षा का माध्यम रखना चाहता था पर दूसरा वर्ग अंग्रेजी की तरफदारी करता था। इस वर्ग के नायक थे प्रसिद्ध टी० बी० मैकॉले।

'तन से भारतीय 'मन से अँग्रेज'—वाली शिक्षा

२ फरवरी, १८३५ को मैकॉले का वह प्रसिद्ध मिनट (विवरण) प्रकाशित हुआ, जिसे आधुनिक भारतीय शिक्षा-पद्धति का मैगनाकार्टा कहा जाता है।

मैकॉले ने प्रचलित भारतीय देशी भाषाओं को दरिद्र, अनगढ़, साहित्य तथा वैज्ञानिक सूचनाओं से शून्य सिद्ध करते हुए अंग्रेजी की सक्षमता घोषित की और कहा - यह आश्चर्य की बात है कि अधिक बुद्धिमान जाति मूर्ख जाति की शिक्षा का भार ले और उससे ही पूछे कि तुम्हें क्या पढ़ाया जाय? यहाँ के निवासियों को क्या पढ़ाना है यह बताना हमारा कर्तव्य है, उनलोगों का नहीं, जिन्हें यह भी पता नहीं कि यह चांद क्या है ये तारे क्या हैं? यदि भारतवासी ये फिजूल की बातें पढ़ना भी चाहें तो हम उन्हें ऐसा नहीं करने देंगे—"It would be bad enough to consult their intellectual taste at the expense of their intellectual health" अर्थात् उनके बौद्धिक स्वास्थ्य की कीमत पर उनकी बौद्धिक रुचि पर उनसे परामर्श करना बहुत बुरा होगा।

मैकॉले ने अंग्रेजी शिक्षा के एक बहुत बड़े उद्देश्य की ओर संकेत करते हुए लिखा—We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern—A class of persons Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect. अर्थात् अभी हमलोगों को एक ऐसे वर्ग के निर्माण के लिए अपनी भरसक कोशिश करनी चाहिए जो हमलोगों और उन लाखों लोगों के बीच जिन पर हम शासन करते हैं दुभाषिये का काम कर सके—ऐसे लोगों का वर्ग जो रक्त और रंग से भारतीय

हो किन्तु रुचियों, मान्यताओं, नीतियों और बुद्धि-विचार से अंग्रेज हो।

मैकाले के शिक्षा विषयक मिनट (विवरण) को तत्कालीन गवर्नर-जेनरल विलियम बेंटिंक ने ७ मार्च १८३५ को अपनी स्वीकृति दे दी। इसके परिणाम भी तेजी से दिखाई पड़ने लगे। भाषा का संस्कृति से सम्बन्ध होता है। नयी शिक्षा पद्धति मनुष्य को अपनी पूर्णता की अभिव्यक्ति और उन्नततर ज्ञानार्जन में सहायता पहुँचाने की अपेक्षा उसे रोटी-दाल उपार्जन कर 'बाबू' बनाने में सहायता पहुँचाने लगी तथा भारतीयों को तन से भारतीय और मन से अँग्रेज बनाने में प्रेरक सिद्ध होने लगी। यही कारण है कि नयी शिक्षा के सम्पर्क में आने के पश्चात् जो प्रथम प्रतिभावान गणितज्ञ निकले—रामचन्द्र, वे ईसाई थे। सुप्रसिद्ध कवयित्री तारुदत्त, उनके पिता गोविन्दचन्द्र दत्त, बंगाल में अँग्रेजी के प्रथम विद्वान साहब चन्द्र बनर्जी, आधुनिक बंगला काव्य के अग्रदूत माइकेल मधुसूदन दत्त और बंगला लोक कथाओं के प्रथम संग्रहकर्त्ता लाल बिहारी डे सब के सब ईसाई थे। लोगों में अपने धर्म, भाषा, संस्कृति और संस्कार के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव प्रबल होने लगा। एक विद्वान का कथन है—"मैकाले क्लाइब से भी बड़ा जनरल सिद्ध हुआ। क्लाइब का साम्राज्य समाप्त हो गया, पर मैकाले ने जिस अँग्रेजी-साम्राज्य की गहरी नींव इस मिनट द्वारा तैयार की; वह आज भी कायम है।"

श्रीरामकृष्ण का अवतरण—देशी भाषाओं का सूर्योदय

यह एक विलक्षण संयोग किन्तु अर्थपूर्ण तथ्य है कि मैकॉले ने जिस दिन (२ फरवरी, १८३५ ई०) अँग्रेजी के माध्यम से (बाबू पैदा करनेवाली) शिक्षा-नीति का मिनट तैयार किया उसके प्रायः ठीक एक वर्ष बाद (१८ फरवरी, १८३६ई०) उसी बंगाल की धरती पर श्रीरामकृष्ण का अवतरण हुआ जिन्होंने न केवल नयी शिक्षा पद्धति के प्रति तीव्र उपेक्षा और घृणा। तिरस्कार प्रदर्शित किया बल्कि मात्र १८ वर्ष की आयु में बंगाल की राजधानी कलकत्ता महानगर में आकर यह शिक्षा लेना अस्वीकार कर दिया जो केवल रोटी-दाल अर्जन करा सकती है, आत्म साक्षात्कार नहीं। ऊपर से साधारण सी दिखाई पड़नेवाली यह एक क्रान्तिकारी घटना थी और भारतीय शिक्षा-नीति के इतिहास में यह दिन ऐतिहासिक महत्त्व तथा वैचारिक विद्रोह एवं नयी शिक्षा दृष्टि का दिशा-निर्देश करने वाला दिन था। सच पूछिए तो श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव भारत के धर्माकाश में ही नहीं, शिक्षा के माध्यम और आदर्श तथा शिक्षा के दर्शन के आकाश में भी एक नये सूर्योदय का सूचक था। श्रीरामकृष्ण का जीवन न केवल हिन्दू धर्म के विरुद्ध पश्चिमी जगत् के कुछ आक्षेपों का सुकोमल किन्तु सप्राण उत्तर था बल्कि भारत और अँग्रेजी मानसिकता वाले भारतीयों के आक्षेपों का भी एक दुर्दमनीय चुनौती भरा उत्तर था। स्कूली शिक्षा से सर्वथा वंचित रहने पर भी यह श्रीरामकृष्ण के लिए ही संभव था कि एक देशी भाषा के माध्यम से जीवन की निगूढ़तम एवं जटिल भावानुभूतियों को उन्होंने इतने ललित और प्रांजल रूप में व्यक्त किया। श्रीरामकृष्ण के पूर्व कदाचित किसी व्यक्ति ने बंगला गद्य में वेद-वेदान्त, शास्त्र पुराणों एवं विभिन्न धर्मों के गहन तत्वों को इतनी सरलता एवं सुष्ठुता से व्यक्त नहीं किया था। इसी प्रकार हिन्दी की कोई विधिवत शिक्षा नहीं पाने पर भी उन्होंने हिन्दी में जब तब अपने भावोद्‌गार व्यक्त कर भारत के भाषाई सौहार्द्र की ओर एक स्वर्ण-संकेत किया।

श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रयुक्त हिन्दी के रूप

श्रीरामकृष्णदेव की वाणियों का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि उन्होंने तीन रूपों में हिन्दी का प्रयोग किया है। वे हैं—

१. संतों की पूर्वकथित वाणियों से मिलते-जुलते भाव

२. पूर्व के संतों के पदों के उद्धरण

३. ठेठ हिन्दी में वार्तालाप

(१) पूर्वकथित वाणियों से मिलते भाव

यह सच है कि श्रीरामकृष्णदेव ने हिन्दी की शिक्षा किसी विद्यालय में नहीं पायी थी। उनका जन्म भी बंगाल के एक निविड़ ग्राम कामारपुकर में हुआ था जहाँ के निवासी हिन्दी का प्रयोग नहीं करते थे। किन्तु हिन्दी भाषी क्षेत्र के विभिन्न पंथों के साधु संत पुरी जाने के क्रम में कामारपुकुर में विश्राम किया करते थे। उन संतों की भाषा हिन्दी थी। इनमें नानक पंथी, रामायत पंथी, आदि साधुओं का पड़ाव पड़ता था। उन साधुओं की सेवा बालक गदाधर (कालान्तर में श्रीरामकृष्ण देव) अनन्य भाव और प्रगाढ़ श्रद्धा से किया करते थे। स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण देव ने उन साधुओं से हिन्दी के अनेक भजन और साधुसंतों के जीवन की कथा-कहानियाँ सुनी थीं। अतः कालान्तर में श्रीरामकृष्ण देव के कथनों में हम कई ऐसे प्रसंग पाते हैं जो हिन्दी भाषी पूर्व के सन्तों के कथनों से मिलते-जुलते हैं। संभव है कि ये भाव श्रीरामकृष्ण देव के बिल्कुल मौलिक भी हों क्योंकि सभी संतों की सत्यानुभूति प्रायः समान होती है। तथापि भावगत साम्य देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रीरामकृष्ण देव पहले उन भावों से संभवतः परिचित हो चुके हों। कुछ उदाहरण देखें।

श्रीरामकृष्ण देव ने एक दिन श्री'म' (मास्टर महाशय) से अपने द्वितीय दर्शन के दिन ही कहा—"निराकार पर विश्वास करते हो, अच्छा है। पर यह न कहना कि यही सत्य है, और सब झूठ। यह समझना कि निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है। जिस पर तुम्हारा विश्वास हो उसी को पकड़े रहो।"[1] और गोस्वामी तुलसीदास भी कहते हैं—

> भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
> उभय हरहिं भव संभव खेदा॥
> (उ० ११४/७)

श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"बात यह है कि ईश्वर को प्यार करना चाहिए। विषय पर विषयी की, पुत्र पर माता की और पति पर सती की जो प्रीति है, उसे एकत्रित करने से जितनी प्रीति होती है, उतनी ही प्रीति से ईश्वर को बुलाने से उस प्रेम का महा आकर्षण ईश्वर को खींच लाता है।[2] कहीं वे कहते हैं—'कृपण व्यक्ति जिस प्रकार सोने-चाँदी के लिए व्याकुल होता है, भगवान के लिए उसी प्रकार व्याकुल होओ।'[3] पुनः वे कहते हैं—'सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर जो आकर्षण होता है उतना यदि भगवान के प्रति हो तो उनका लाभ होता है।[4] और गोस्वामी तुलसी दास ने भी प्रभु से ऐसी ही प्रीति की कामना की है—

> कामिहि नारि पिआरि जिमि,
> लोभिहि जिमि प्रिय दाम।
> तिमि रघुनाथ निरन्तर,
> प्रिय लागहुँ मोहि राम॥
> (उ० का० १३०/ख)

विजय कृष्ण को ईश्वर दर्शन नहीं होने का कारण समझाने के क्रम में एक दिन श्रीरामकृष्ण राम, लक्ष्मण और सीता का उदाहरण देते हुए कहते हैं--"सिर्फ ढाई हाथ की दूरी पर श्रीरामचंद्र हैं, जो साक्षात् ईश्वर हैं; पर बीच में सीतारूपिणी माया का पर्दा पड़ा हुआ है, इसी कारण लक्ष्मण रूपी जीव को ईश्वर के दर्शन नहीं होते।"[5]

---

१. श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भाग १, नवम संस्करण पृ० ९
२. वही पृ० १४-१५
३. अमृत वाणी : तृतीय संस्करण पृ० १५८
४. वही पृ० १५९
५. वचनामृत :

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी श्रीरामचन्द्र के वनगमन के क्रम में यही बात प्रकारान्तर से कही है —

आगें रामु लखनु बने पाछें।
तापस वेष विराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥

(अयो० १२३/१)

नाम गुणगान की महिमा बताते हुए श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं—"देहरूपी वृक्ष पर पाप-पक्षी बैठे हुए हैं; उनका नाम कीर्तन करना मानो ताली बजाना है। ताली बजाने से जिस प्रकार वृक्ष के ऊपर के सभी पक्षी भाग जाते हैं, उसी प्रकार उनके नाम-गुण कीर्तन से सभी पाप भाग जाते हैं।"[६] और तुलसीदास कहते हैं—

राम नाम सुंदर करतारी।
संशय विहग उड़ावनहारी॥

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण के ऐसे कितने ही भावोद्‌गार हैं जो पूर्व के हिन्दी भाषी संतों-महात्माओं के भावों से साम्य रखते हैं।

(२) पूर्व के संतों के पदों के उद्धरण

श्रीरामकृष्ण देव अपने भावों को पुष्ट करने के लिए कबीर, तुलसी आदि संतों और भक्तों की कथाओं-कविताओं का भी उद्धरण दिया करते थे जिससे उनके हिन्दी-ज्ञान का गहरा परिचय प्राप्त होता है।

एक ब्राह्म भक्त को ईश्वर के स्वरूप की भिन्नता के विषय में समझाते हुए कहते हैं—"वे सगुण हैं और निर्गुण भी। ··· कबीर कहते थे,—'निराकार मेरा पिता है और साकार मेरी माँ।" इसी भाँति एक दिन निराकारवादी ब्राह्म मणिलाल को लक्ष्य कर श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"कबीर कहते थे -

'निर्गुण तो है पिता हमारा और सगुण महतारी।
काकों निन्दौ काकों बन्दौ दोनों पल्ले भारी॥'[७]

एक दिन प्राणकृष्ण नामक भक्त को निष्कपटता की महिमा समझाते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं- "विषय बुद्धि का त्याग किये बिना चैतन्य नहीं होता –ईश्वर नहीं मिलते।" बिना सरल हुए कोई उन्हें पा नहीं सकता।

'ऐसी भक्ति करो घर भीतर, छोड़ कपट चतुराई।
सेवा बन्दी और अधीनता, सहज मिले रघुराई॥'[८]

रामायत पन्थी साधुओं से श्रीरामकृष्णदेव ने हिन्दी के अनेक भजन सुने-सीखे थे। इनमें से कुछ भजन तो इन्हें इतने प्रिय थे कि प्रायः अपने गंधर्व कंठ से गाकर वे भक्तों को आत्म विभोर कर दिया करते थे। श्रीरामकृष्ण देव के अनन्य लीला पार्षद एवं उनकी विश्व विख्यात जीवनी के लेखक स्वामी सारदानन्दजी महाराज ने इस घटना का उल्लेख करते हुए जो लिखा है उसे मैं सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। वे लिखते हैं—"···कितने ही साधुओं की बातें श्रीरामकृष्ण देव हमसे कहा करते थे। कभी कभी उन रामायत-पन्थी साधुओं से उन्होंने भगवान् के जो भजन सीखे थे, उनको गाकर हमें सुनाया करते थे। यथा—

(मेरे) राम को नहीं चीन्हा है दिल,
चीन्हा है तू क्या रे; और जाना है तू क्या रे।
सन्त वही जो राम-रस चाखे
(और) विषय-रस चाखा है सो क्या रे॥
पुत्र वही जो कुल को तारे
और जो सब पुत्र हैं सो क्या रे॥

अथवा

सीतापति रामचन्द्र, रघुपति रघुराई।
भज ले अयोध्यानाथ, दूसरा न कोई॥

---

६. वही : पृ० २२५
७. वही : पृ० १५७
८. वही : पृ० ३३०
९. वही : पृ० २१५

हसन बोलन चतुर चाल, अयन वयन दृग विशाल।
भृकुटि कुटिल तिलक भाल, नासिका सुहाई ॥
केसर को तिलक भाल, मानो रवि प्रातकाल।
मानो गिरि शिखर फोड़, सुरसरि वहिराई ॥
मोतिन को कण्ठमाल, तारागण उर विशाल।
श्रवण कुण्डल झलमलात, रतिपति छवि छाई ॥
सखा सहित सरयू तीर, विहरे रघुवंश वीर।
तुलसीदास हरप निरखि, चरणरज पाई ॥

अथवा, वे गाया करतेथे—

'राम भजा सो जीया रे जग में
राम भजा सो जीया रे ॥'

अथवा,

'मेरा राम विना कोई नहीं रे तारणवाला।'

—इन दो मधुर गीतों के अवशिष्ट चरण हमें विस्मृत हो गये हैं।

श्रीरामकृष्णदेव ने उन साधुओं से जिन दोहों को सीखा था, कभी कभी उनको ही वे हमें सुनाया करते थे। वे कहा करते थे, 'साधु लोग चोरी, नारी तथा झूठ इन तीन से सदा अपने को वचाने का उपदेश देते हैं।' यह कहकर ही पुनः वे कहते थे, 'तुलसीदासजी के इन दोहों में क्या है, सुनो—

सत्यवचन अधीनता परधन-उदास।
इसमें हरि ना मिलै तो जामिन तुलसीदास ॥
सत्यवचन अधीनता परतिय मातु समान।
इसमें हरि ना मिलै तुलसी झूठ जवान ॥

'अधीनता क्या है जानते हो—दीन भाव। ठीक-ठीक दीनभाव के उदय होने पर अहंकार का नाश हो जाता है तथा ईश्वर की प्राप्ति होती है। कबीरदास के पद में भी इस वात का उल्लेख है—

'सेवा वन्दी और अधीनता सहज मिले रघुराई
हरि से लागि रहो रे भाई ॥' इत्यादि।"[10]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण देव न केवल हिन्दी गीतों या भजनों को स्मृति के आधार पर अपने सुमधुर कंठों से गाया करते थे वल्कि उन गीतों के मर्म को भी भली-भाँति समझते और उनकी गंभीर एवं प्रसंगानुकूल विशद व्याख्या करने में भी वे सक्षम-समर्थ थे। इतना ही नहीं, वे नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) आदि से भी हिन्दी भजनों को तीव्र रुचि से सुना करते थे। एक बार का प्रसंग है—"एक उत्तर प्रदेश का भिक्षुक गाने के लिए आया। भक्तों ने दो गाने सुने। गाने नरेन्द्र को अच्छे लगे। उन्होंने गानेवाले से कहा, 'और गाओ।' श्रीरामकृष्ण—वस-वस अव रहने दो, पैसे कहाँ हैं?"[11]

कभी कभी तो श्रीरामकृष्ण हिन्दी का कोई विशेष भजन सुने विना तृप्ति का अनुभव ही नहीं किया करते थे। स्वामी सारदानन्दजी महाराज ने लिखा है—"नरेन्द्रनाथ के दक्षिणेश्वर आने पर श्रीरामकृष्णादेव कभी-कभी उन्हें देखते ही भावाविष्ट हो जाते थे। ·· फिर कभी उसी समय उन्हें उनका भजन सुनने की इच्छा होती और नरेन्द्र की मधुर ध्वनि सुनते ही वे समाधिस्थ हो जाते थे।··· श्रीरामकृष्णदेव पर वाह्य ज्ञान प्राप्त होकर कभी नरेन्द्रनाथ को कोई विशेष संगीत गाने के लिए अनुरोध करते थे; किन्तु अन्त में नरेन्द्रनाथ के मुख से 'जो कुछ है, सो तू ही है, इस भजन के न सुनने तक उन्हें पूर्ण परितृप्ति नहीं होती थी।"[12]

(३) ठेठ हिन्दी में वार्तालाप

यह पहले कहा जा चुका है कि श्रीरामकृष्णदेव ने हिन्दी भाषी साधुओं से हिन्दी के भजन सुने-सीखे थे। किन्तु उन्होंने उन साधुओं से हिन्दी भाषा में

१०. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग : द्वितीय खण्ड : तृतीय संस्करण ; पृ० ३००-१
११. वचनामृत : तृतीय भाग : द्वितीय संस्करण पृ० १४२
१२. लीला प्रसंग : तृतीय खण्ड : तृतीय संस्करण पृ० ११९-२०

वार्तालाप करना भी सीखा होगा इसमें कोई सन्देह नहीं। पुरी जाने वाले साधुगण दो-चार दिनों के पड़ाव में बंगला में कदापि बातचीत नहीं कर पाते होंगे। मुझे नहीं मालूम कि किसी हिन्दी ग्रंथ का सांगोपांग पाठ श्रीरामकृष्णदेव ने सुना था या नहीं पर रामचरित मानस का बहुलांश अवश्य ही उन्होंने सुना होगा। यद्यपि इस बात का उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि श्रीरामकृष्ण को अपने गुरु तोतापुरी से किस भाषा में बातचीत होती थी पर मेरा चिन्तन है कि पंजाब से आये तोतापुरीजी बंगला नहीं जानते थे और श्रीरामकृष्णदेव से हिन्दी में वेदान्त की गंभीर बातें करते ही थे। निश्चय ही श्रीरामकृष्ण देव भी उन्हें हिन्दी में ही उत्तर देते होंगे।

राजस्थान के प्रख्यात पंडित एवं नैयायिक पंडित नारायण शास्त्री श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन करने के सात-आठ वर्ष पूर्व ही न्याय का अध्ययन करने बंगाल (नवद्वीप) आ चुके थे। अतः वे बंगला के भी निष्णात पंडित हो गये होंगे। फिर भी यह ज्ञात नहीं हो सका कि श्रीरामकृष्ण देव से उनकी किस भाषा में बातचीत हुआ करती थी। इसी भाँति स्वामी दयानन्द सरस्वती से भी उनकी किस भाषा में बातें हुई यह ज्ञात नहीं है। किन्तु दयानन्दजी थोड़े दिनों के लिए ही कलकत्ता आये थे। इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि उनसे श्रीरामकृष्ण देव ने हिन्दी में ही बातचीत की होगी।

सन् १८८५ ई० में पं० शशधर का हिन्दू धर्म पर व्याख्यान देने कलकत्ता आगमन हुआ था और उसी वर्ष रथोत्सव के दिन श्रीरामकृष्णदेव ने उनके निवास पर जाकर उन्हें कई अमूल्य उपदेश प्रदान किये थे जिसके फलस्वरूप कुछ ही दिनों के बाद प्रचार कार्य का परित्याग कर पंडितजी तपस्या के निमित्त श्रीकामाख्या पीठ चले गये। लेकिन इन दोनों के वार्तालाप की भाषा का हमें कोई ज्ञान नहीं है। लक्ष्मी नारायण मारवाड़ी से श्रीरामकृष्ण किस भाषा में वार्ता करते थे इसका भी ज्ञान हमें नहीं है।

इन सबके बावजूद श्रीरामकृष्णदेव ने कुछ साधुओं, पण्डितों एवं भक्तों से हिन्दी में बातचीत की थी, इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। १८८४ ई० के अक्टूबर महीने की घटना है। पंचवटी में आये दो साधुओं से श्रीरामकृष्ण देव ने जप, ध्यान, भक्ति और वेदान्त आदि गंभीर विषयों पर हिन्दी भाषा में बातचीत की। श्रीम ने वचनामृत में उक्त घटना का जो वर्णन किया है वह निम्नोक्त है—

"आज पंचवटी में दो साधु आये हुए हैं। वे गीता और वेदान्त यह सब पढ़ते हैं। दोपहर के भोजन के बाद श्रीरामकृष्ण के कमरे में आकर दर्शन कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण अपनी छोटी खाट पर बैठे हुए हैं। साधुओं ने प्रणाम किया, फिर जमीन पर चटाई पर बैठ गये। मास्टर आदि भी बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण हिन्दी में बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—क्या आप लोगों की सेवा हो चुकी है?

साधु—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण—क्या खाया?

साधु—रोटी-दाल, आप खाइयेगा?

श्रीरामकृष्ण—नहीं, मैं तो थोड़ा-सा भात खाता हूँ। क्यों जी, आप लोग जो जप और ध्यान करते हैं, यह सब निष्काम ही करते हैं न? गीता में लिखा है।

साधु—(दूसरे साधु से)—

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥

श्रीरामकृष्ण—उन्हें एक गुना जी कुछ दोगे, उसका हजार गुना प्राप्त होगा। इसलिए सब काम करके जलांजलि दी जाती है- कृष्ण के लिए फल का अर्पण किया जाता है।

"युधिष्ठिर जब सब पाप कृष्ण को अर्पित करने के लिए तैयार हुए, तब तक एक आदमी ने (भीम ने) उन्हें रोका। कहा—ऐसा कर्म न करो—कृष्ण को जो कुछ दोगे, उसका हजार गुना तुम्हें प्राप्त होगा।' अच्छा क्यों जी, निष्काम होना चाहिए। सब कमनाओं का त्याग करना चाहिए न?"

साधु—जी महाराज।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु मेरी तो भक्ति भावना है। वह बुरी नहीं, अच्छी ही है। मीठी चीजें बुरी हैं, आम्ल पित्त निर्माण करती हैं, किन्तु मिश्री उल्टे उपकार करती है। क्यों जी?

साधु—जी महाराज।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा जी, वेदान्त कैसा है?

साधु—वेदान्त में षट्शास्त्र हैं।

श्रीरामकृष्ण—परन्तु 'ब्रह्म सत्य है और संसार मिथ्या' यही वदान्त का सार है, मैं कोई अलग वस्तु नहीं हूँ, मैं ब्रह्म, हूँ—यह। क्यों जी?

साधु—जी हाँ,

श्रीरामकृष्ण—परन्तु जो लोग संसार में हैं, और जिनमें देह बुद्धि है, 'सोऽहम्' भाव उनके लिए अच्छा नहीं; वहुत बुरा है। संसारी सेव्य और सेवक के भाव में रहेंगे। 'हे ईश्वर, तुम सेव्य हो—प्रभु हो, मैं सेवक हूँ—तुम्हारा दास हूँ।' जिनमें देह बुद्धि है, उन्हें 'सोऽहम्' की अच्छी धारणा नहीं होती।"

सव लोग चुपचाप बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण आप ही आप धीरे-धीरे हँस रहे हैं। आत्माराम अपने ही आनन्द में मग्न रहते हैं।

एक साधु दूसरे के कान में कह रहा है, 'अरे देखो, इसे परम हंस अवस्था कहते हैं।'

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से) हँसी आ रही है।"[13]

२० अक्टूबर, १८८४ को अन्नकूट के अवसर पर श्रीरामकृष्णदेव १२ नम्बर, मल्लिक स्ट्रीट, बड़ा बाजार के किसी मारवाड़ी भक्त (संभवतः गुरसीमल) के यहाँ गये थे—निमंत्रित होकर। बाबूराम (बाद में स्वामी प्रेमानन्द) और श्री 'म' भी साथ थे। वहाँ मारवाड़ी भक्त के घर पर एक पण्डित थे। उनसे श्रीरामकृष्णदेव की जो वार्ता हुई वह भी हिन्दी में हुई थी। श्री 'म' (मास्टर महाशय) ने उस दिन की उक्त घटना का विवरण यों प्रस्तुत किया है—

"मारवाड़ी भक्त ने पण्डितजी को श्रीरामकृष्ण के पास भेजा। पण्डितजी ने आकर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर आसन ग्रहण किया। पण्डितजी के साथ अनेक प्रकार की ईश्वर सम्बन्धी वार्ता हो रही है। अवतार सम्बन्धी बातें होने लगी।

श्रीरामकृष्ण—अवतार भक्तों के लिए है, ज्ञानियों के लिए नहीं।

पण्डितजी—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अवतार पहले तो भक्तों के आनन्द के लिए होता है, और दूसरे दुष्टों के दमन के लिए। परन्तु ज्ञानी कामनाशून्य होते हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—परन्तु मेरी सव कामनाएँ नहीं मिटीं। भक्ति की कामना वनी हुई है।

इसी समय पण्डितजी के पुत्र ने आकर श्रीरामकृष्ण की चरण-वन्दना की और आसन ग्रहण किया।

श्रीरामकृष्ण (पण्डितजी के प्रति)—अच्छा जी, भाव किसे कहते हैं?

पण्डितजी—ईश्वर की चिन्ता करते हुए जब मनोवृत्तियाँ कोमल हो जाती हैं, तब उस अवस्था को भाव कहते हैं, जैसे सूर्य के निकलने पर बर्फ गल जाती है।

---

१३. बचनामृत। द्वितीय भाग: पृ० ४२३-२५

श्रीरामकृष्ण—अच्छा जी, प्रेम किसे कहते हैं ?

पण्डितजी हिन्दी में ही बातचीत कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण उनके साथ बड़ी मधुर हिन्दी में बातचीत कर रहे हैं। पण्डितजी ने प्रेम का उत्तर एक दूसरे ही ढंग से समझाया।

श्रीरामकृष्ण –(पण्डितजी से)—नहीं, प्रेम का अर्थ यह नहीं है। प्रेम यह है, ईश्वर पर ऐसा प्यार होगा कि संसार के अस्तित्व का होश तो रह ही नहीं जायेगा, साथ ही अपनी देह भी जो इतनी प्यारी वस्तु है, भूली जायेगी। प्रेम चैतन्यदेव को हुआ था।

पण्डितजी जी हाँ जैसे मतवाला होने पर होता है।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा जी, किसी को भक्ति होती है, किसी को नहीं, इसका क्या अर्थ है ?

पण्डितजी—ईश्वर में वैषम्य नहीं है। वे कल्पतरु हैं। जो जो कुछ चाहता है, वह वही पाता है, परन्तु कल्पतरु के पास जाकर माँगना चाहिए।

पण्डितजी यह सब हिन्दी में कह रहे हैं। श्रीरामकृष्ण मास्टर की ओर देखकर अर्थ बतला रहे हैं।"

× × ×

"कुछ देर के बाद पण्डितजी ने प्रणाम किया। कहा, 'तो पूजा करने जाऊँ ?'

श्रीरामकृष्ण—अजी, बैठो।

पण्डितजी फिर बैठे।

श्रीरामकृष्ण ने हठयोग की बात चलायी। पण्डितजी भी हिन्दी में इसी के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे। श्रीरामकृष्ण ने कहा, हाँ, यह भी एक तरह की तपस्या है, परन्तु हठयोगी देहाभिमानी साधु है, उसका मन सदा देह पर लगा रहता है।

पण्डितजी ने फिर विदा होना चाहा। पूजा करने के लिए जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण पण्डितजी के लड़के से बातचीत कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण—कुछ न्याय, वेदान्त तथा और दर्शनों के पढ़ने से श्रीमद्भागवत खूब समझ में आती है, – क्यों ?

पुत्र—जी महाराज, सांख्य दर्शन पढ़ने की बड़ी आवश्यकता है। इस तरह की बातें होने लगीं।

श्रीरामकृष्ण तकिये के सहारे जरा लेट गये। पण्डितजी के पुत्र तथा भक्तगण जमीन पर बैठे हुए हैं। श्रीरामकृष्ण लेटे ही लेटे धीरे-धीरे गा रहे हैं—

हरि सों लागी रहो रे भाई।
तेरा बनत बनत बनि जाई।।
अंका तारे बंका तारे, तारे मीराबाई।
सुआ पढ़ावत गणिका तारे,
तारे सजन कसाई।।[१४]

श्रीरामकृष्ण देव द्वारा हिन्दी में की गयी उपर्युक्त बातचीत से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उनकी हिन्दी भाषा में गहरी पैठ थी और वे वेद, वेदान्त, गीता, भक्ति, हठयोग आदि विभिन्न गहन विषयों पर सरल-सुमधुर हिन्दी में अपने भाव व्यक्त कर सकते थे। इसके साथ ही यह भी लक्षित होता है कि वे हिन्दी भाषा के लहजे या स्वर-शैली तथा तेवर से भी पूर्णतः परिचित थे। जैसे, वे साधुओं से पूछते हैं—"क्या आप लोगों की सेवा हो चुकी है ?" यहाँ सेवा का प्रयोग भोजन के अर्थ में हुआ है जिसका प्रयोग हिन्दी भाषी लोग साधुओं के भोजन के लिए किया करते हैं। फिर कहीं वे कहते हैं—"अच्छा जी, वेदान्त कैसा है ?" "अच्छा जी, भाव किसे कहते हैं ?" 'बैठो जी।"—ये सब उक्तियाँ निखालिस हिन्दी की हैं जिनका प्रयोग श्रीरामकृष्ण ने सहज रूप से किया है।

---

१४. वही : पृ० ५१२–१५

अन्नकूट के दिन जिस मारवाड़ी के घर श्रीरामकृष्ण गये थे उसके साथ भी उन्होंने ईश्वर को प्राप्त करने के उपायों और अन्य आध्यात्मिक विषयों पर लम्बी बातचीत की थी। उस बातचीत में भी जिस स्वर-शैली का उन्होंने प्रयोग किया है उससे यह स्पष्टतया सूचित होता है कि उस दिन उनकी बातचीत की भाषा हिन्दी ही रही होगी।

वस्तुतः विद्यापति कबीर, सूर, तुलसी और मीरा आदि के गीतों एवं पदों में प्रयुक्त होने के कारण जिस हिन्दी को संतों-महात्माओं और भक्तों की भाषा कहलाने का गौरव मिला, श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण उसी हिन्दी को भगवान की भाषा होने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

१. एक भक्तिमती महिला — इलाहाबाद ५,००० रुपये
२. एक शुभैषी — पुणे २०० रुपये
३. श्री एस० के० चक्रवर्ती — इलाहाबाद २७ रुपये
४. श्री पृथ्वीराज शर्मा — ठण्डी, राजस्थान ३०० रुपये
५. श्री दीपक श्रीवास्तव — पटना (बिहार) १०१ रुपये
६. एक शुभ चिन्तक — इलाहाबाद २५० रुपये
७. भी० वी० उरकुडे — चन्द्रपुर (महाराष्ट्र) ५० रुपये
८. श्रीमती शान्ति देवी — इन्दौर (मध्य प्रदेश) १०० रुपये
९. श्री एस० डी० शर्मा — अहमदाबाद ३०१ रुपये
१०. श्रीमती प्रभा भार्गव — बीकानेर (राजस्थान) २०० रुपये
११. श्री रामलायक सिंह — सम्होता (छपरा) २५ रुपये
१२. डा० एस पी० भार्गव — अजमेर १०० रुपये
१३. श्री राम छविला सिंह — मुजफ्फरपुर २५ रुपये
१४. श्री निखिल शिवहरे — दमोह (म० प्र०) १५१ रुपये
१५. श्रीमती उषारानी कर्ण — सुरसंड, (सीतामढ़ी) १०० रुपये
१६. श्री पी० सी० सरकार — नरेन्द्रपुर (प० ब०) १०० रुपये
१७. श्रीमती मीरा मित्रा — इलाहाबाद २०१ रुपये
१८. श्री गोपाल शं० तायवाडे — अमरावती (महाराष्ट्र) १०० रुपये
१९. श्री महादेव शि० गुंडावार — भद्रावती (महाराष्ट्र) ५० रुपये
२०. श्री राजीव कुमार राजू — सैदपुर, पटना-४ ३१ रुपये
२१. श्री राज सिंह — गाजियाबाद (उ० प्र०) ५० रुपये

मूर्ति-पूजा

(जिस प्रकार मनुष्यों में देवता को आविष्कृत किया जा सकता है, उसी प्रकार प्रतिमा में भी हम उनको देख सकते हैं, पा सकते हैं।)

यह काल्पनिक कहानी नहीं, सच्ची घटना है। अमरीका जाने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द भारतवर्ष के विविध प्रान्तों का दौरा कर रहे थे। उसी समय वे दिल्ली से अलवर राज्य गये। वे जहाँ भी जाते, उनके अद्भुत व्यक्तित्व और प्रतिभा को देख लोग विस्मित रह जाते और उनके दर्शन हेतु भीड़ लग जाती। कुछ दिनों में ही समग्र अलवर में स्वामीजी के आने का समाचार फैल गया। सभी शिक्षित व्यक्तियों के बीच उनकी प्रशंसा और समालोचना के स्वर सुनाई पड़ते।

एक दिन राजा के दीवान स्वयं उनसे मिलने आये। स्वामीजी को देख कर और उनके साथ बातें करके वे अत्यंत प्रभावित हुए और उन्हें अपने घर ले जाकर परम आदर के साथ उनकी सेवा करने लगे। उस समय राजा अलवर में नही थे। अलवर से कुछ एक निर्जन महल में एकांतवास के लिए गये थे। दीवान ने राजा को पत्र द्वारा सूचित किया कि एक साधु अलवर में आये हैं। अंग्रेजी भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं। आप उन्हें देखकर अवश्य खुश होंगे।

दीवानजी की चिट्ठी पाने के दूसरे दिन ही राजा अलवर वापस आ गये। स्वामीजी से मिलने हेतु सीधे दीवान के निवास-स्थल पर आ हाजिर हुए। राजा उच्च शिक्षित और स्पष्ट वक्ता थे। स्वामीजी को देखकर श्रद्धा के साथ नत होकर प्रणाम किया और ससम्मान उनको अपने सामने बैठाकर वार्तालाप शुरू किया।

सर्व प्रथम राजा ने प्रश्न किया "स्वामीजी, आप एक बड़े विद्वान हैं। आप आसानी से अर्थोपार्जन कर सकते हैं। परंतु आप भीख माँगते फिरते हैं, क्यों?"

मनुष्य को पहचानने की अद्भुत शक्ति थी स्वामीजी में। विदेशी शिक्षाभिमानी राजा का प्रश्न सुनकर वे समझ गये कि वैसे जवाब से इनके अभिमान को चोट पहुँचेगी। स्वामीजी एक ऐसा उत्तर ढूँढ़ रहे थे जिससे उस राजा की चिन्ताधारा भारतीय भावनाओं के प्रति श्रद्धान्वित हो।

स्वामीजी ने अपने मुख पर दृढ़ता का भाव लाकर कहा, "राजा, क्या आप कह सकते हैं कि अपना राजकार्य छोड़कर आप क्यों दिन-रात अंग्रेज साहबों के संग आमोद-प्रमोद में निमग्न रहते हैं?" एक भारतीय के द्वारा इस अप्रत्याशित प्रश्न के पूछे जाने पर राजा सोचने लगे कि सटीक उत्तर क्या होगा?

इधर वहाँ उपस्थित सभी लोग स्वामीजी के वर्ताव से चंचल हो उठे थे। राजा के साथ ऐसी बात करना वस्तुतः दुस्साहस का उदाहरण था। सभी लोग व्यर्थ चिंता करने लगे कि न जाने इस दुस्साहसी सन्त को क्या परिणाम भोगना पड़े।

राजा ने उत्तर दिया, "मैं यह कहने में असमर्थ हूँ कि मैं ऐसा क्यों करता हूँ। परन्तु ऐसा करने में असीम आनन्द आता है।"

स्वामीजी ने तत्परता के साथ कहा, "मेरे साथ भी यही बात है। मुझे फकीर बनकर भीख माँगने में असीम आनन्द और संतोष की प्राप्ति होती है।

स्वामीजी के प्रश्न से राजा रुष्ट नहीं हुए है, यह देखकर लोग आश्वस्त हुए। राजा ने पुनः स्वामीजी से पूछा, "अच्छा स्वामीजी, ये लोग जो मूर्ति पूजा करते हैं, इसमें मुझको विश्वास नहीं। मेरी गति क्या होगी ?"

यह कहकर राजा ने अपने अधरों पर मुस्कान बिखेर दिया। शायद उनकी बातों में हिन्दुओं की मूर्ति पूजा के सम्बन्ध में कटाक्ष का भाव था।

राजा के वक्तव्य पर स्वामीजी को विश्वास न हो रहा था और उन्होंने कहा आप मजाक कर रहे हैं।"

राजा ने कहा, नहीं स्वामीजी, ऐसी बात नहीं है। यह एकदम सच है कि मैं धातु-काष्ठ-मिट्टी-पत्थर की पूजा नहीं कर पाता हूँ। क्या ऐसा नहीं करने पर मेरा अमंगल होगा ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया "जैसा जिसका विश्वास है।" स्वामीजी के इस उत्तर से वहाँ उपस्थित कोई सज्जन प्रसन्न न हुए। अलवर-वासियों का मूर्ति पूजा पर अटूट विश्वास था। उनके मन में यह आशा थी कि स्वामीजी राजा का हृदय परिवर्तन कर देंगे। पन्तु विपरीत चीज हो गयी। इस उत्तर को पाकर राजा अपने विचारों पर और भी डट जाएँगे।

परन्तु सबको स्तम्भित करते हुए स्वामीजी ने एक अदभुत कार्य किया। राजा की एक तस्वीर दीवार पर टंगी हुई थी। स्वामीजी ने उस तस्वीर को देखने की इच्छा प्रकट की, एक व्यक्ति ने उस तस्वीर को उतारकर स्वामीजी के हाथ में दिया।

स्वामीजी ने पूछा "यह किसकी तस्वीर है ?"

दीवान ने तुरंत उत्तर दिया, "यह हमारे महाराजजी की तस्वीर है।"

गम्भीर होकर स्वामीजी ने दीवानजी से अनुरोध किया, "आप जरा इस चित्र के ऊपर थूकिये तो।"

स्वामीजी के इस विचित्र अनुरोध को सुन सभी विस्मित हो गये। मन में यह डर समा गया कि पता नहीं किसे यह कार्य करना पड़े। सामने ही महामान्य राजा बहादुर बैठे हुए है और उन्हीं की तस्वीर पर थूकना है। यह कैसा विचार है स्वामीजी का ? सिर्फ ख्याल ही नहीं, कितना बड़ा दुस्साहस !

स्वामीजी ने पुनराग्रह किया, "दीवानजी, आप इस पर थूकिए तो।" सभी दंग रह गये। किसी को कुछ कहने की हिम्मत न हुई।

स्वामीजी ने लोगों की ओर उन्मुख होकर कहा, "आपलोगों में से कोई आकर इस चित्र पर थूकिए। दीव'न जी तो असमर्थ रहे।"

किसी ने आने का साहस न किया। स्वामीजी ने कहा, "किस कारण से आप लोग आगे नहीं बढ़ रहे हैं ? यह तो सिर्फ एक कागज का पृष्ठ है। फिर इस पर तो थूकने में कोई आपत्ति होनी नहीं चाहिए।"

उपस्थित सभी लोगों की उस वक्त की दशा लिखने की अपेक्षा कल्पना करना अधिक आसान है। सब के सब भयभीत हो गये थे। दीवानजी कभी राजा की ओर देखते तो कभी स्वामीजी की ओर। सर्वत्र शांति छायी हुई थी। अन्ततः दीवान जी ने करबद्ध होकर कहा "यह किस प्रकार का आदेश है ? यह हमारे महाराज जी की तस्वीर है। आप ही कहिए हम इसका अपमान कैसे कर सकते हैं"।

स्वामीजी ने मुख पर आश्चर्य का भाव लाकर कहा आप कैसी बातें कर रहे है ? यह महाराज का

चित्र अवश्य है परंतु यह स्वयं महाराज तो नहीं हैं इसमें आपके महाराज का रक्त, वाणी, स्वभाव-कुछ भी नहीं। यह सिर्फ स्याही से रंगीन किया हुआ एक कागज है। आप किस कारण से हिचक रहे हैं थूकने में?"

स्वामीजी की इस बात का कोई सटीक उत्तर नहीं ढूंढ़ पाया। तब स्वामीजी ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा, "आप लोग किस कारण से डर रहे हैं, यह मैं बताता हूँ। इस तस्वीर में हम राजा का प्रतिबिम्ब देखते हैं। अतः इस पर थूकने से यही प्रतीत होगा कि हम राजा पर ही थूक रहे हैं। है कि नहीं?"

इतना सुनने के पश्चात् वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने राहत की साँस ली। समवेत स्वर से सभी ने कहा, "जी हाँ, यही बात है।" तत्पश्चात् राजा को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने कहा, "देखिए महाराज, इस तस्वीर में आप विद्यमान नहीं हैं। परन्तु ये लोग इस तस्वीर का वैसा ही सम्मान करते है जैसा कि आपका।

महाराज चुपचाप राजा की बातें सुन रहे थे। इस घटना को देखकर उनके मन में एक नवीन भावना प्रस्फुटित हो रही थी। स्वामीजी ने पुनः कहा कि महाराज आपकी तस्वीर को देखते ही मन में आपकी स्मृतियाँ जग पड़ती हैं और फलतः इस चित्र को देख कर आपको देखने की अनुभूति होती है। यही कारण है कि इस कागज को इतना सम्मान प्राप्त हो रहा है। आप सहमत हैं कि नहीं?

राजा ने उत्तर दिया, "वही तो देख रहा हूँ स्वामीजी।"

स्वामीजी ने कहा, "भक्त भी इसी भावना से देवता की मूर्ति को देखते हैं। वे मूर्तियों में धातु-काष्ठ या पत्थर की पूजा नहीं करते हैं वरन् उस मिर्जीव मूर्ति में ईश्वर के अस्तित्व का अनुभ करते हैं। मूर्ति भक्त के मन में उसके आरा देवता की स्मृति जगा देती है, उस सर्व शक्ति के किसी गुण या भाव का स्मरण दिलाती ये ही हैं मूर्ति-पूजा की मूल बातें।"

नाधना में शीघ्रता

यावत्सस्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महा—
न्संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

जब तक शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जब तक बुढ़ापा दूर है, जब तक इन्द्रियाँ सबल व सक्षम हैं और जीवनीशक्ति का क्षय नहीं हुआ है, प्रज्ञावान व्यक्ति को चाहिए कि वह तभी आत्मकल्याण (मोक्ष प्राप्ति) का यथासाध्य प्रयास कर ले, क्योंकि मकान में आग लग जाने पर कुआँ खोदने का काम प्रारम्भ करने से क्या लाभ?

—भर्तृहरि कृत 'वैराग्यशतकम्' ७५

समय

—अनंत वि० पुरेकर
अमरावती (महाराष्ट्र)

हिन्दी में एक उक्ति है, "अब पछताने से क्या फायदा जब चिड़िया चुग गया खेत" एक तरफ से विचार किया जाय तो उस उक्ति का अर्थ, समय का सर्वोत्तम उपयोग तथा मूल्य दर्शाता है, और दूसरी ओर, विचार किया जाय तो समय की धारा में कठोर बहता निरन्तर परिश्रम अन्यथा अधःपतन, यह अर्थ दर्शाता है।

भगवान बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य अंगुलिमाल से कहा था कि "पश्चाताप की अग्नि में समस्त बुरे तथा पापपूर्ण कर्म सूखी लकड़ी की भाँति जल जाते रहे।' 'तात्विक दृष्टि से तथा सामान्य दृष्टि से वाक्य जीवन का श्रेय वहन करता है। जो सो हुआ अब उसे पुनः याद करके अपने है। को, जाल में से छूटने के लिए यत्न करते पक्षी की भाँति तड़पाना अच्छा नहीं। इससे हमारा स्वयं पर से विश्वास उठ जाएगा और जीवन में कुछ करने से हम वंचित तथा असमर्थ रह जाएँगे।

आदमी, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों ना हो उससे समूचे जीवन में एक न एक गलती हो ही जाती है। स्वामी विवेकानन्दजी ने कहाथा, "मेरे समस्त पापकर्म ही मुझे अधिक पुण्य करने पर मजबूर करते हैं।" जब हम पाप करते हैं तभी हृदय में पुण्य जाग उठता है। जब दुःख सहते हैं तभी मन में सुख की लालसा उत्पन्न होती है। जब हम झूठ बोलेंगे तभी हमारे दिल में सच जागेगा। यह कहना भी उतना अनुचित नहीं होगा कि यह (ऊपर वर्णन किया गया) प्रकृति का नियम है।

मनुष्य अपने जीवन के क्षेत्रों में अनेक घटनाओं से गुजरता मुसाफिर है। उसकी मंजिल मौत है। और मंजिल प्राप्त करने के लिए वह सच तथा सदगुणों को अपना जीवन साथी बनाता है। उसका मार्ग कठोर निरंतर परिश्रम है।

यह विचार सत्य है। हम देखते आये हैं और अभी भी अपनी जिन्दगी में हम यह देखते हैं कि कोई आत्मा शरीर रूपी मोहक वस्त्र परिधान कर, शिशुरूप में अपना जीवन क्रम इस धरातल पर आंरभ करती है। और बचपन, यौवन और अंत में बुढापा इन भिन्न तथा परस्पर विरोधी कालों में से गुजरती वह शरीर रूपी वस्त्र त्याग देती है।

कहीं से भी शुरुआत करो अंत वहीं होता है। यह ऐसी एक चीज है जिसे आज तक कोई जीत नहीं सका और भविष्य में भी वैसी आशा की कोई किरण नहीं है।

यही जीवन है, यही मौत है, यही अंतिम सत्य भी है। इसे जानकर हमें अपना स्व—स्वरूप, पहचान कर तथा इन समस्त बंधनों को त्याग कर सुख-दुःख, ज्ञान-अज्ञान के उस पार जाना है। वहीं सूर्योदय हो रहा है सच्चे जीवन का।

हमें जानना चाहिए कि यह जीवन चलायमान है। समय आता है और पंछी की भाँति उड़ भी जाता है। लेकिन हम उसका सत्उपयोग करने में असमर्थ रह जाते हैं। और जीवन की सफलता से अनजान रह जाते हैं। समय एक ऐसी चिड़ियां है जो किसी की राह नहीं देखती और एक बार गुजर कर वह फिर से मुड़कर भी नहीं देखती।

विवेक चूड़ामणि

स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक- डॉ० आशीष बनर्जी

अनादिकालोऽयमहं स्वभावो
जीवः समस्तव्यवहारवोढ़ा ।
करोति कर्माण्यपि पूर्ववासनः
पुण्यान्यपुण्यानि च तत्फलानि ॥१८६॥

(अग्रिम श्लोक के 'भुङ्क्ते' का इस पद से संबंध है ।)

अहं बोध का आश्रय, उत्पत्ति रहित, विज्ञानमय-कोश रूप यह जीव लौकिक एवं वैदिक सभी कर्मो का अनुष्ठान करता है। पूर्ववासना से परिचालित हो यह सत् एवं असत् कर्म समूहों का अनुष्ठान करता है एवं सुख दुःखादि रूप इन सभी कर्मों का फल भोग करता रहता है। १८६

जीव की उत्पत्ति कब हुई यह कहना मुश्किल है; परन्तु यह जीवबोध सर्वदा नहीं रहता, साधना द्वारा जीवभाव को हटाने पर ही मुक्तिलाभ सम्भव है, यह शास्त्रसिद्ध है।

विज्ञानमय कोश द्वारा जो कर्मादि अनुष्ठित होते हैं, उस विषय में श्रुति ही प्रमाण है। 'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च।' तैः, २/५ 'विज्ञान-मय कोश यज्ञ का प्रयोजक एवं कर्म समूह का अनुष्ठाता है।'

भुङ्क्ते विचित्रास्वपि योनिषुव्रज-
न्नायाति निर्यात्यध ऊर्ध्वमेषः ॥
अस्यैव विज्ञानमयस्य जाग्रत्
स्वप्नाद्यवस्थाः सुख दुःख भोगः ॥१८७॥

विज्ञानमय कोश रूपी यह जीव नाना योनियों में जन्म ग्रहण करके भी ऊर्ध्व गति को तो कभी अधोगति को प्राप्त होता है। जाग्रतस्वप्नादि अवस्था का अनुभव एवं सुख-दुःखादि का अनुभव इसी विज्ञानमय जीव को होता है। १८७

शुद्ध आत्मा निर्विकार है। उसे जन्ममरण, सुख-दुःख भोग अथवा जाग्रत-स्वप्नादि अवस्था का अनुभव नहीं होता। इन सबका अनुभव कर्ता जीव शुद्ध आत्मा का प्रतिबिम्ब मात्र है।

देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्म-
गुणाभिमानं सततं ममेति
विज्ञानकोशोऽयमति प्रकाशः
प्रकृष्टसान्निध्यवशात्परात्मनः ।
अतो भवत्येष उपाधिरस्य
यदात्मधीः संसरति भ्रमेण ॥१८८॥

अत्यंत-प्रकाश स्वभाव यह विज्ञानमय-कोश शुद्ध आत्मा के अत्यंत निकट होने के कारण देहादि को आश्रय कर आश्रम विहित धर्म कर्म गुणादि (मेरा ही सब) इस प्रकार का अभिमान करता है। इस कारण विज्ञानमय कोश भी शुद्ध आत्मा की एक उपाधि है। भ्रमवश 'यह विज्ञानमय कोश ही मैं हूँ' ऐसा अनुभव कर आत्मा जन्म-मरणादि का अनुभव करती है। १८८

विज्ञानमय-कोश स्वयं प्रकाश है, इस विषय में श्रुति प्रमाण—

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदि स्फुरत्ययं ज्योतिः।

कूटस्थः सन्नात्मा कर्ता भोक्ता भवत्युपा-
धिस्थः ॥१८९॥

जिस विज्ञानमय कोश का वर्णन किया जा रहा है, वह सभी कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय एवं बुद्धि में प्रकाशित होता है। चैतन्य स्वरूप आत्मा स्वरूपतः निर्विकार होने पर भी उपाधि के साथ संबन्ध होने के कारण स्वयं को कर्ता या भोक्ता मान बैठती है। १८९

आत्मा ज्योति स्वरूप है। 'हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः।' मु० : उ०, २/२/९ ज्योतिर्मय एवं श्रेष्ठ कोश के अन्दर (हृदय में) अविद्या दोष रहित एवं निरवयव ब्रह्म स्थित है। वे शुद्ध एवं तेजोमय पदार्थ समूहों के भी अवभासक हैं। जो आत्म ज्ञानी है (शब्दादि विषयक बुद्धि प्रत्यय के साक्षी होने का जिन्हें ज्ञान है), वे ही केवल ब्रह्म को जानते हैं।

आलोच्य श्लोक का लक्ष्य श्रुतिवाक्य—'कतम आत्मा इति ? योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदयन्तर्ज्योतिः पुरुषः।' बृ० उ० ४/3/७—'आत्मा कौन है ? वह जो बुद्धि में उपहित, इन्द्रियगणों अवस्थित एवं बुद्धि के अन्दर स्थित स्वयं ज्योति पुरुष है।'

बुद्धि के साथ संबन्ध वश ही आत्मा देह धार करती है—

स्वयं परिच्छेदमुपेत्य बुद्धे-
स्तादात्म्यदोषेण परं मृषात्मनः।
सर्वात्मकः सन्नपि वीक्षते स्वयं
स्वतः पृथक्त्वेन मृदो घटानिव। १९०॥

अज्ञ व्यक्ति जिस प्रकार घट को मिट्टी से भि वस्तु मानता है, वैसे ही शुद्ध आत्मा सर्वात्मक हो पर भी मिथ्या स्वरूप विज्ञानमय कोश से स्वयं अभिन्न मानने के फल स्वरूप बुद्धि के दोष से दूषि हो कर स्वयं को स्व-स्वरूप से पृथक देहधारी जी रूप में कल्पना करता है। १९०

मृत्तिका और घट मूलतः एक ही वस्तु हैं; उन पार्थक्य केवल नाम और रूप में है। और नाम औ रूप मन के द्वारा कल्पित हैं; उनकी वास्तविक सत्त नहीं है।

भक्तों के लिए जो उपासना पद्धतियाँ हैं उनमें मनुष्य रूप की उपासना ही सबसे उत्तम है। यदि वास्तव में किसी की पूजा करनी है, तो अपनी हैसियत के अनुसार प्रतिदिन छः या बारह दरिद्रों को अपने घर लाकर, उन्हें नारायण समझकर उनकी सेवा करना अच्छा है। ... कुछ दरिद्रनारायण, अन्धनारायण, या क्षुधार्त नारायण को प्रतिदिन घर में लाना एवं प्रतिमा की जिस प्रकार पूजा की जाती है, उसी प्रकार उनकी भी भोजन-वस्त्रादि के द्वारा पूजा करना। ... इस प्रकार की नारायण-पूजा सर्वापेक्षा श्रेष्ठ पूजा है, और भारत के लिए इसी पूजा की सबसे अधिक आवश्यकता है।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

नवम्बर-दिसम्बर के महीनों में लाटू महाराज बेलुड़ मठ में थे; निम्नलिखित तथ्यों से इस बात की पुष्टि होती है। हरिपद महाराज ने बताया—"स्वामीजी के द्वितीय बार विदेश चले जाने पर लाटू महाराज शरत् महाराज के साथ खूब घनिष्ठता पूर्वक मिलते-जुलते थे। उन दिनों शरत् महाराज कलकत्ता में व्याख्यान देने को जाते समय उन्हें भी साथ ले जाते थे। एक बार किसी सभा में करीब दो घण्टे व्याख्यान देने के बाद शरत् महाराज काफी थक गये थे, परन्तु तब भी श्रोताओं को प्रश्न करते देखकर लाटू महाराज सभा के बीच ही कह उठे, 'अरे शरद् भाई! बैठ बैठ, बहुत हुआ। और कितना बोलोगे?' लाटू महाराज के बोलने का ढंग देखकर एक श्रोता बड़े ही नाराज हुए और सभा में ही उन्हें दो-एक बातें सुनाने लगे। इस पर लाटू महाराज बोले, 'अभी तो आप लोग उसके प्रति बड़ा प्रेम दिखा रहे हैं, पर इतना लेक्चर देने के बाद कल जब उसका गला खराब होगा, तब क्या आप लोग उसे देखने, उसकी सेवा करने जाएँगे? वह कष्ट तो उसे स्वयं ही भोग करना पड़ेगा।' लाटू महाराज ने ये बातें इतनी आन्तरिकता पूर्वक कहीं कि सभा में उपस्थित सभी लोग समझ गये कि एक ही दिन में इतने प्रश्न करके वक्ता को कष्ट पहुँचाना उचित नहीं।"

इसी वर्ष ९ दिसम्बर की रात को बिना किसी को कोई पूर्व-संवाद दिये स्वामीजी लौटकर अकेले ही मठ में आ पहुँचे। उस दिन मठ में उपस्थित एक गृही भक्त से हमने यह प्रसंग जैसा सुना है, वैसा ही उद्धृत करते हैं—"रात में एक पंगत का खाना हो चुका था और दूसरी पंगत खाने को बैठी थी, उसी समय माली ने आकर बताया, 'बाबू! एक साहब आया है।' साहब के आने की बात सुनकर सभी अटकल लगाने लगे कि इतनी रात गये भला कौन आ सकता है? राखाल महाराज ने यह सोचकर कि शायद स्वामीजी के कोई शिष्य आये होंगे, बाबूराम महाराज तथा एक भक्त को साहब की अगवानी करने भेज दिया। इसी बीच साहब मठ का द्वार लाँघकर उद्यान के भीतर आ पहुँचे थे। बीच रास्ते में उन दोनों की साहब के साथ भेंट हुई। साहब ने तब तक अँग्रेजी छोड़कर बंगला बोलना आरम्भ कर दिया था। साहब के वेष में स्वामीजी को देख बाबूराम महाराज बोले, 'थोड़ा सा समाचार देकर क्या नहीं आ सकते थे, भाई!' अस्तु, सभी लोग दौड़कर स्वामीजी से मिलने को चले आये। लाटू महाराज उस समय गंगातट पर ध्यान कर रहे थे। वे भक्त वहाँ जाकर चिल्लाकर कहने लगे, 'महाराज! स्वामीजी आये हैं। चलिए, मुलाकात नहीं करेंगे क्या?' स्वामीजी के आगमन की बात सुनकर लाटू महाराज ने कोई व्यग्रता नहीं दिखायी, बल्कि वे उन भक्त से बोले, 'अरे! बैठो बैठो, यहाँ पर ऐसी रात में थोड़ा ध्यान करो।' लाटू महाराज की बात सुनकर वे भक्त बड़े असमंजस में पड़ गये—एक ओर तो वे उनकी बात अस्वीकार नहीं कर सकते थे और दूसरी ओर उनके मन में स्वामीजी की बातें सुनने का आग्रह प्रबल हो रहा था। इस

बीच स्वामीजी अपना आहार आदि समाप्त कर लाटू महाराज से मिलने गंगा के तट की ओर आये। दोनों ने एक-दूसरे को आलिंगन पाश में बाँध लिया। आपस में कुशल-मंगल का आदान-प्रदान हो जाने के बाद स्वामीजी ने लाटू महाराज से कहा, 'क्यों रे ! मैं बड़ी देर से आया हूँ। सभी मिलने आये, पर तू यहीं बैठा रहा, मुझ पर नाराज है क्या ?' इस पर लाटू महाराज बोले, 'नाराजगी कैसी ? मन में यहीं बैठे रहने की इच्छा हुई, इसलिए नहीं गया।' स्वामीजी ने कहा, 'सुना कि तू मठ में नहीं रहकर, इधर-उधर भटकता फिरता था। तेरा काम कैसे चलता था ?' लाट महाराज ने उत्तर दिया, 'क्यों ? उपेन ठाकुर सहायता करता था। जिस दिन कुछ भी नहीं जुटता, उस दिन उसकी दुकान के सामने मेरे खड़े होते ही वह समझ जाता था और मुझे दो-चार आने दे देता था।' यह सुनकर स्वामीजी अपना मुख ऊपर उठाकर बोले, 'ठाकुर ! उपेन का कल्याण करें।' सभी लोग जानते हैं कि उनका यह अमोघ आशीर्वाद अक्षरशः प्रतिफलित हुआ है। तरंगों पर छिटकती चाँदनी को देखकर स्वामीजी कहने लगे, 'यह जो दृश्य देख रहे हो, इसका नील नदी के दृश्य के साथ काफी सादृश्य है।' आदि आदि। इस प्रकार कुछ काल बातचीत में बिताकर स्वामीजी विश्राम करने को ऊपर चले गये, परन्तु लाटू महाराज उसी गंगातट पर बैठे पुनः ध्यान में निमग्न हो गये।" अगले दिन भोर में (चार बजे) जब वे गृही भक्त राखाल महाराज का पत्र लेकर बलराम मन्दिर जाने को नाव ढूँढ रहे थे, उन्होंने देखा कि लाटू महाराज गंगातट पर वहीं बैठे तब भी ध्यानमग्न हैं।

१९०१ ई० के प्रारम्भ में लाटू महाराज मठ में निवास कर रहे थे। ६ फरवरी १९०१ ई० को जब मठ की रजिस्ट्री करायी गयी, तब स्वामीजी ने लाटू महाराज को भी मठ का एक ट्रस्टी बनाना चाहा था। इस पर लाटू महाराज बोले, 'मुझे वह सब झंझट अच्छा नहीं लगता। मुझे तो भाई इन सबमें मत फँसाना।' स्वामीजी ने कहा, 'तू बन जा न ! तुझे किसी झंझट में नहीं पड़ना होगा; तेरा नाम भर दे देता हूँ। इसे अस्वीकार मत करना।' सुना है कि राखाल महाराज ने भी उनसे यही अनुरोध किया था। परन्तु लाटू महाराज अत्यन्त दृढ़तापूर्वक उन लोगों से बोले, 'मैं उन सब में बिलकुल नहीं पड़ूँगा।'

उसी काल की कितनी ही घटनाएँ हमें सुनने को मिली हैं। स्वामी शुद्धानन्द ने बताया था— "लाटू महाराज स्वयं पढ़ना नहीं जानते थे, तो भी शास्त्र आदि सुनने का उनमें बड़ा आग्रह था। वे दूसरों के द्वारा उनका पाठ करा लेते थे। एक दिन की बात स्मरण हो आती है, उन दिनों मठ के एक ही कमरे में हम दोनों सोया करते थे। बड़ी रात गये उस दिन वे उठकर बोले, 'ओ सुधीर ! सुधीर ! थोड़ा गीता पढ़कर सुनाओ।' उस रात मैंने उन्हें गीता पढ़कर सुनायी।"

एक और घटना है, जो शरत् महाराज ने इस प्रकार बताया था—"एक दिन मठ के एक साधु उन्हें कठोपनिषद पढ़कर सुना रहे थे। जब उन्होंने इस श्लोक का पाठ किया—

'अंगुष्ठमात्रः पुरुषोन्तरात्मा सदा जनानां
हृदये सन्निविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषिकां धैर्येण॥

तब ज्योंही उन्होंने सुना 'प्रवृहेत् मुंजात् इषीकां धैर्येण, अर्थात् मूँज में से सींक निकालने के समान ही धैर्यपूर्वक शरीर से अन्तरात्मा को पृथक् करना चाहिए' त्योंही वे बड़े आनन्दित होकर बोले, 'ठीक कहते हो।' अपनी अनुभूति से अनुरूपता होने के कारण ही वे इतनी सहजता से (व्याख्या सुनने के पूर्व ही) इस दुर्बोध तत्त्व की धारणा कर सके थे।"
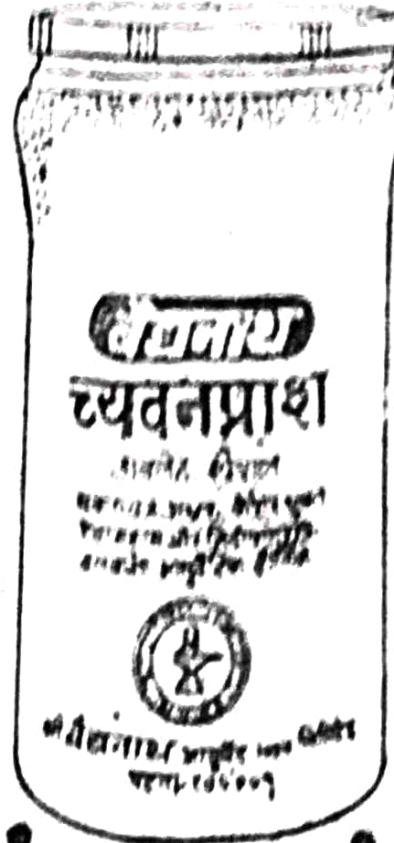
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टॉनिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं २०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार कर...

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या — सी. एच. पी. — १४-८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	९.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००

पुस्तक	मूल्य
सम्भाषणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००
विविध	
विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रातिनिधिक संचयन)	२५.००
,, (सस्ता संस्करण)	१०.००
पत्रावली — (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	२१.००
भारतीय व्याख्यान	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
वर्तमान भारत	२.००
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	५.००
चिन्तनीय बातें	४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)	४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य	४.५०
युवकों के प्रति	६.००
विवेकानन्द — राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज)	१.२५
शक्तिदायी विचार (,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.००
मेरी समर-नीति (,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर—४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना — ४ में मुद्रित।